समर्पण

गांधीवादी रामराज्य की

शम्बूक प्रजा को

यशपाल

विषय सूची

विषय प्रवेश

इस देश की जनता ने ब्रिटिश साम्राज्यशाही के शोषण और दासता से मुक्ति के लिए बहुत लम्बे समय तक संघर्ष किया है। भारत की जनता के इस संघर्ष का नेतृत्व भारतीय मुख्यतः राष्ट्रीय-कांग्रेस के हाथ में था। भारतीय राष्ट्रीय-कांग्रेस का नेतृत्व प्रकट तौर पर गांधी जी के हाथ में था इसलिये कांग्रेस की नीति गांधीवाद के सत्य-अहिंसा के सिद्धांतों के अनुकूल रही है। आज भारत में कांग्रेसी राज कायम है। भारतीय जनता के संघर्ष का उद्देश्य कांग्रेसी राज बना देने के लिए गांधी जी ने उसे रामराज्य का नाम दे दिया था। कांग्रेस के राज्य को रामराज्य का नाम देने का प्रयोजन था 'भगवान' राम को सत्य, न्याय और अहिंसा की मर्यादा मानने वाली भारत की श्रद्धालु प्रजा को अपने नेतृत्व में समेट सकना और उन का अंध-विश्वास प्राप्त कर सकना। आज भारत की जनता इस रामराज्य के फल और परिणाम को अपनी भूख, कंगाली और राजनैतिक दमन के रूप में देख रही है। देश की जनता अनुभव कर रही है कि वह ठगी गई है। कांग्रेसी राज अपनी शासन नीति को गांधीवाद की नीति बता कर इसे 'गांधी जी की जय' के बल से जनता के मन और मस्तिष्क पर बांध देने का यत्न कर रहा है।

कांग्रेस के अलावा अनेक दूसरे राजनैतिक दलों ने भी भारत की राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए प्रयत्न किए हैं। इन दलों के प्रयत्न कांग्रेस के आंदोलनों की तरह वैधानिक माँगों के लिए ही नहीं बल्कि ब्रिटिश शासन के विरुद्ध सभी संभव उपायों से विद्रोह के रूप में थे। उन के अस्तित्व को सहन करना ब्रिटिश साम्राज्यशाही के लिए संभव नहीं था। ब्रिटिश साम्राज्यशाही कांग्रेस को अपना प्रतिद्वन्दी मान कर भी इसे भारतीय जनता के प्रतिनिधि के रूप में स्वीकार करती रही। इस का एक कारण तो यह था कि देश की जनता का बहुत बड़ा भाग कांग्रेस के पीछे था। ब्रिटिश सरकार द्वारा कांग्रेस को मान्यता देने का दूसरा कारण कांग्रेस की अपने संघर्ष को वैधानिक उपायों द्वारा, अंग्रेज़ों द्वारा बनाये विधान की रक्षा करते हुए चलाने की प्रतिज्ञा थी। गांधी जी ने अपनी नीति को अहिंसात्मक नीति का नाम दे कर, उस पर आध्यात्मिकता का

रंग चढ़ा कर उसे सांसारिकता और राजनीति से ऊपर उठाने और मनुष्यमात्र के लिए स्वीकार करने योग्य बना देने की चेष्टा की परन्तु उन की इस अहिंसा का तथ्य ब्रिटिश शासन की मिली-जुली सामन्तवादी और पूंजीवादी राजनैतिक और आर्थिक प्रणाली के मूल तत्व पर आँच न आने देना ही था। इस का स्पष्ट अर्थ था कि देश में ब्रिटिश साम्राज्यशाही द्वारा जारी किए गए विधान और व्यवस्था से कांग्रेस के ध्येय और विचारधारा का विरोध नहीं था। जहाँ तक ब्रिटेन द्वारा इस देश में जारी की गई शोषण की पूंजीशाही व्यवस्था का प्रश्न था, गांधी जी और कांग्रेस उस व्यवस्था के विद्रोहियों और जनता के विद्रोह से उस व्यवस्था की रक्षा करते रहे। कांग्रेस का उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्यशाही द्वारा स्थापित किए गए विधान और व्यवस्था की रक्षा करते हुए शासन की शक्ति अपने हाथ में ले लेना था। इस परिवर्त्तन का एकमात्र अर्थ यही हो सकता था कि इस देश में कायम इस देश की जनता का शोषण और दमन करने वाली व्यवस्था या विधान जैसे के तैसे बने रहें। उस विधान और व्यवस्था का नियंत्रण और संचालन करने वाले व्यक्ति बदल जायें। कांग्रेस और गांधी जी अपने इसी उद्देश्य को रामराज्य का नाम देकर, इस देश की जनता को रामराज्य से सुख समृद्धि की आशा दिला कर, इस के लिये अपना सर्वस्व बलिदान कर देने के लिए जनता को पुकार रहे थे।

१५ अगस्त १९४७ के दिन इस परिवर्त्तन की वैधानिक रूप से घोषणा कर दी गई। कांग्रेस के नेतृत्व और संरक्षण में देश में रामराज्य की स्थापना हो गई। इस रामराज्य की स्थापना से कांग्रेस का उद्देश्य—ब्रिटिश साम्राज्य-शाही द्वारा इस देश में स्थापित पूंजीशाही विधान और व्यवस्था की रक्षा करते हुए शासन के विधान और व्यवस्था के नियंत्रण और संचालन का अधिकार इस देश की पूंजीपति श्रेणी के ऊपरी भाग के हाथ में दे देना—पूरा हो गया परन्तु जनता जिस उद्देश्य से मुक्ति के लिए संघर्ष कर रही थी, वह पूरा नहीं हुआ।

इस देश की जनता रामराज्य की स्थापना के पश्चात से दिन-प्रति-दिन अपनी गिरती जाती अवस्था, नित्य बढ़ती जाती भूख, कंगाली, बेरोज़गारी राजनैतिक दमन और नागरिक स्वतंत्रता के अपहरण से यह बात अनुभव कर रही है। कांग्रेस और गांधीवाद ने रामराज्य के जिस आदर्श को अपने सामने रख कर, उसे सत्य, अहिंसा और वैधानिकता का नाम देकर जिस नीति को अपनाया था और जिस रूप में कांग्रेस उस पर चल रही है, उस का परिणाम

इस देश की शासन की वागडोर पर पूंजीपति श्रेणी के हाथ मजबूत कर देने के सिवा और कुछ हो भी नहीं सकता था।

रामराज्य की स्थापना हो जाने के पश्चात् देश की जनता रामराज्य की समता, न्याय और अहिंसा का रूप अपने नित्य के जीवन में देख रही है। जनता को यह निराशा क्यों हुई ? इस के कारण और बीज कांग्रेस की नीति और कार्यक्रम में सदा से ही मौजूद थे। गांधी जी और कांग्रेस की 'महान सफलता' यह थी कि वे इस देश की जनता को शोषित और दास बनाए रखने वाली नीति और कार्यक्रम को जनता की मुक्ति के संघर्ष का नाम दे सके और इस के लिए जनता का सहयोग भी पा सके।

ब्रिटिश शासन और उस की सामन्तशाही और पूंजीशाही शोषक व्यवस्था से मुक्ति के संघर्ष का स्वाभाविक मार्ग क्रान्ति द्वारा उस व्यवस्था को तोड़ देना ही था। कांग्रेस ने जनता के संघर्ष को क्रांति का रूप न लेने दे कर अहिंसा और सत्याग्रह के वैधानिक आन्दोलन का रूप दे दिया। इस सत्याग्रह और अहिंसा का प्रयोजन ब्रिटिश साम्राज्यशाही की शोषक व्यवस्था को शोषित जनता के विरोध और आक्रमण से बचाना था और जनता के विरोध को सदा वैधानिकता की शर्त से जकड़े रहना था। १९२१ का आन्दोलन चौरी-चौरा कांड के कारण स्थगित करना, पेशावर विद्रोह के समय विद्रोही सैनिकों को हतोत्साह करना और जनता के व्यापक सत्याग्रह को व्यक्तिगत सत्याग्रह बना देना, जनता के प्रति विश्वासघात के बहुत स्पष्ट उदाहरण हैं। ऐसे प्रत्येक अवसर पर, जब कि देश की जनता क्रांति के लिए तैयार हुई और ब्रिटिश साम्राज्यशाही व्यवस्था के पांव डगमगाने लगे गांधी जी ने कांग्रेस के संगठन द्वारा अहिंसा के नाम पर उस शोषक व्यवस्था की रक्षा का ऐसा प्रयत्न किया जो स्वयं ब्रिटिश शासन के लिए भी संभव न था। जिस समय तक अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति के कारण इस देश में ब्रिटिश शासन बना रहना संभव रहा, कांग्रेस की गांधीवादी अहिंसा (पूंजीवादी व्यवस्था की रक्षा की नीति) ही ब्रिटिश साम्राज्य की मुख्य रक्षक बनी रही।

गांधीवादी अहिंसा में कांग्रेस की पूंजीवादी नेताशाही की कितनी आस्था थी, यह गांधी जी की मृत्यु के दिन ही स्पष्ट हो गया। अहिंसा को मनुष्य-मात्र के जीवन का परम लक्ष्य बताने वाले उस 'महा पुरुष' के शव को तोपगाड़ी पर सजाकर उस की शवयात्रा करके कांग्रेस की नेताशाही ने यह स्पष्ट कर

दिया कि गाँधीवाद के उद्देश्यों (पूंजीपति श्रेणी के हितों की रक्षा) को पूरा करने और रामराज्य की व्यवस्था को लागू करने के लिए वे तोप की शक्ति में ही विश्वास रखते हैं। कांग्रस सरकार ने यह स्पष्ट कर दिया कि सत्य, प्रेम और अहिंसा के साधन उन के लिए उसी समय तक उपयोगी थे जब तक वे अपनी श्रेणी (ब्रिटिश साम्राज्यशाही) से घरेलू लड़ाई लड़ रहे थे। अपनी श्रेणी के हित पर आँच आते देख वे दमन के उन सभी उपायों का प्रयोग कर रहे हैं जिन का कि संसार की क्रूर से क्रूर तानाशाही सरकारें कर सकती हैं परन्तु कांग्रेस सरकार अपनी इस नीति को आज भी गांधीवाद और रामराज्य का नाम दे रही है।

ब्रिटिश साम्राज्यशाही से शासन का अधिकार लेकर स्वराज्य और रामराज्य स्थापित करने के लिए जनता का आह्वान करते समय कांग्रस ने प्रजा के राज, जमींदारी उन्मूलन और राष्ट्रीयकरण के जितने वायदे किए थे, वे इस रामराज्य में झूठ साबित हो चुके हैं। उन वायदों के स्थान पर अब नए वायदे चले आ रहे हैं। इन वायदों पर भरोसा करने की अपेक्षा स्वतंत्रता के संघर्ष में कांग्रेस के गांधीवादी कार्यक्रम और वर्तमान समय में कांग्रस सरकार की नीति का विश्लेषण ही अधिक उपयोगी हो सकते हैं।

आज भी कांग्रेस सरकार अपने जनहित के कार्यक्रमों और अपने जनतंत्रात्मक रूप की डोंडी पीटने से थकती नहीं दिखाई देती बल्कि यही तो उस की एकमात्र सम्पत्ति है। इस सरकार के जनहित और जनतंत्र में उतना ही सत्य है जितना कि इस सरकार द्वारा अपने सभी दफ्तरों, अदालतों और जेलों में 'अहिंसा के अवतार' गांधी जी के चित्र लटका कर इन चित्रों के ही नीचे निरंकुश और निस्संकोच रूप से धाँधली और दमन करने में। कांग्रस सरकार के रामराज्य के न्याय की धारणा का मूल साधनों की मालिक श्रेणी के अधिकार की रक्षा में है। औद्योगिक विकास की परम्परा में उत्पन्न हो जाने वाली कठिनाइयों और अन्तर्विरोधों को न्याय की यह धारणा दूर नहीं कर सकता।

शोषण से जनता की मुक्ति के प्रयत्नों का समाधान आज के इतिहास में सोवियत रूस और चीनी जनतंत्र की नई सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था पेश कर रही है परन्तु कांग्रेसी सरकार इस बात के लिए प्रतिज्ञाबद्ध है कि वह इस देश की जनता को सोवियत रूस और चीन के रास्ते पर नहीं जाने देगी। कांग्रेसी सरकार इस देश की जनता का कल्याण पूंजीपति श्रेणी की संरक्षता

में ही करने की प्रतिज्ञा किये बैठी है। गांधी जी द्वारा स्वीकृत इस देश की, पूंजीपति श्रेणी के प्रजा की संरक्षक होने के अधिकार की रक्षा के लिए, गांधीवादी कांग्रेसी सरकार नित्य नये उपायों की खोज में रहती है। सोवियत, समाजवादी देशों और चीन के उदाहरण से यह बात मध्यान्ह सूर्य के प्रकाश की तरह स्पष्ट हो चुकी है कि किसी भी देश का दारिद्रय दूर करने देश के साधनों का शीघ्रतम विकास करने के लिये व्यक्तिगत साधन और प्रयत्नों की अपेक्षा समाज के स्वामित्व में सामूहिक प्रयत्न बहुत अधिक सफल हो सकते हैं। कांग्रेस सरकार के लिए इस सत्य से अधिक मूल्य साधनों का व्यक्तिगत अधिकार की प्रणाली की रक्षा का है। इसलिए अधिक उत्पादन के लिए राष्ट्रीयकरण की नीति की उपेक्षा न कर सकने पर भी वह पूंजीपति श्रेणी के मुनाफा कमा सकने के अधिकार की रक्षा प्राणपन से कर रही है।

राष्ट्रीयकरण की नीति के प्रति इस सरकार की यही आस्था है कि इस नीति को सफल बनाने का भार वह उन लोगों के कंधों पर दे रही है जिन्हें राष्ट्रीयकरण की नीति में स्वयं विश्वास नहीं। सम्भवतः कांग्रेसी सरकार गांधीवाद को सत्य प्रमाणित करने के लिये संसार को यह दिखाना चाहती है कि रामराज्य की व्यक्तिगत स्वामित्व की और स्वामी वर्ग द्वारा दास वर्ग पर दया कर उस का पालन करने की नीति समाजवाद की अपेक्षा अधिक सत्य है। कांग्रेसी सरकार यदि राष्ट्रीयकरण की नीति की असफलता का उदाहरण संसार के सामने पेश करेगी तो यह उन की अपनी ईमानदारी और योग्यता की ही कसौटी मानी जायगी।

यशपाल

प्रथम संस्करण
१९५१

गांधीवाद का प्रभाव और परिणाम

भारत की राष्ट्रीय सरकार के नेताओं का दावा है कि उन्होंने गांधीवादी नीति के आधार पर देश को 'अहिंसात्मक क्रान्ति' द्वारा विदेशी शासन से स्वतंत्र कर लिया है और भविष्य में भी वे गांधीवादी नीति द्वारा ही देश की आर्थिक और राजनैतिक समस्याओं को हल करके देश की प्रजा को सुखी और समृद्ध बना देंगे।

आज भारत की प्रजा के सामने प्रश्न है:— कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने गांधीवाद के सत्य और अहिंसा की नीति पर चल कर इस देश के लिये जो स्वतंत्रता प्राप्त की है उसे देश की जनता ने किस रूप में अनुभव किया है, जनता ने अपने जीवन में क्या सुविधायें और अधिकार पाये हैं और देश की प्रजा भविष्य में अपने लिये विकास और समृद्धि के कैसे अवसर की आशा कर सकती है ?

गांधीवाद के सिद्धान्तों और उस के राजनैतिक परिणाम पर विचार करने के लिये सब से पहले गांधीवादी नेताओं के इस दावे की सचाई पर विचार करना आवश्यक है कि गांधीवाद ने संसार में एक अभूतपूर्व चमत्कार कर के भारत को 'अहिंसात्मक क्रान्ति' द्वारा विदेशी शासन से स्वतंत्र करा लिया है। देश का शासन विदेशी सरकार के हाथ में चले जाने के परिणाम स्वरूप देश की जनता ने किस रूप में स्वतंत्रता अनुभव की है; प्रजा ने क्या अधिकार और अवसर प्राप्त किये हैं, इन बातों पर विचार करने से बात लम्बी और गहरी हो जायगी। राष्ट्रीय-कांग्रेसी राज में प्रजा की स्वतंत्रता के रूप और वास्तविकता की छानबीन का प्रश्न अभी रहने दीजिये। हम ब्रिटिश सरकार द्वारा देश का

शासन भारतीय सरकार को सौंप देने की ही बात को लें। इस सचाई से इनकार नहीं किया जा सकेगा कि कांग्रेस सरकार के हाथ में भारत का शासन आ जाना ब्रिटिश सरकार, भारतीय कांग्रेस और मुस्लिम लीग के नेताओं के बीच एक समझौते का परिणाम था। भारत के गांधीवादी नेताओं का दावा है कि ब्रिटिश सरकार को उन की अहिंसात्मक शक्ति के आगे हार स्वीकार कर समझौते के रूप में कांग्रेस की न्यायोचित मांग को पूरी कर देना पड़ा। इस समझौते के वास्तविक कारणों और परिस्थितियों को जानने के लिये और यह समझने के लिये कि भारत की मांग का दमन अपनी सशस्त्र शक्ति से करते रहने वाले ब्रिटेन ने गत महायुद्ध के बाद समझौते की नीति क्यों अपना ली, ब्रिटिश सरकार के उद्देश्य और दृष्टिकोण की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

ब्रिटेन के प्रधान मंत्री मि० क्लीमेंट एटली ने भारत और पाकिस्तान के साथ अपने इस समझौते का उद्देश्य प्रकट करते हुये कहा है—"कम्यूनिजम अपना प्रभाव अनेक गुप्त तरीकों से संसार भर में फैला रहा है। एशिया और अफ्रीका में कम्यूनिज्म के इस प्रभाव को रोकने के लिये हमने भारत, पाकिस्तान और लंका को स्वतंत्रता देकर उन्हें कम्यूनिज्म के विरुद्ध अपने कामनवेल्थ के मोर्चे में अपना साझीदार और सहायक बना लिया है।"*

भारत के गांधीवादी नेता अपने राजनैतिक कार्यक्रम के प्रति जनता में अंध विश्वास पैदा करने के लिये चाहे जो दावा करें परन्तु ब्रिटेन के प्रधान मंत्री और ब्रिटिश साम्राज्यशाही को न तो गांधीवाद की अहिंसात्मक क्रान्ति के प्रति श्रद्धा थी, न उस का भय था। उन्हें रूस की समाजवादी व्यवस्था की सफलता के कारण भारत और दूसरे उपनिवेशों में फैलते कम्युनिस्ट विचारों से भय था और इस भय का सामना करने के लिये ब्रिटिश साम्राज्यशाही अपनी सैनिक शक्ति पर भरोसा नहीं कर सकती थी। संसार में फैलते कम्युनिज्म के भय से अपने साम्राज्य की रक्षा के लिये उन्हें भारत और दूसरे उपनिवेशों की समाजवाद-विरोधी पूंजीपति श्रेणी के सहयोग और साझेदारी की आवश्यकता थी।

ब्रिटेन के प्रधान मंत्री द्वारा प्रकट किये गये रहस्य के आधार पर यह

---

* इंगलैण्ड के प्रधान मंत्री मि० क्लीमेंट एटली की ब्राइटन में ५ सितम्बर १९५० की वक्तृता, National Herald, Sept. 6, 1950.

समझ लेना कठिन नहीं कि ब्रिटिश सरकार के हाथ से शासन का अधिकार भारतीय सरकार को दिला देने वाले समझौते का कारण भारत के गांधीवादी राजनैतिक आन्दोलन की विजय नहीं थी। इस का श्रेय अन्तरराष्ट्रीय रूप ने बढ़ती कम्युनिज़्म की शक्ति और साम्राज्यशाही को कम्युनिज़्म से अनुभव होने वाले भय को ही है। गांधीवाद का अपने कार्यक्रम की सफलता का दावा सत्य नहीं है और इस दावे के आधार उन का देश के शासन की बागडोर सम्भालने का दावा भी सत्य नहीं है। इस देश में गांधीवादी-कांग्रेसी-शासन की नींव ही एक असत्य पर रखी गई है और इस असत्य को बनाये रखने के लिये गांधीवादी कांग्रेस और कांग्रेसी सरकार की पूरी शक्ति लगाई जा रही है।

इस देश में गांधीवाद को क्रियात्मक रूप देने के लिए अनेक संस्थाओं अखिल-भारतीय चर्खा संघ, मज़दूर-महाजन-सभा, हरिजन-सेवा संघ और सर्वोदय-समाज आदि का संगठन किया गया। भारत सेवक समाज आदि नये संगठन भी बनाये जा रहे हैं। इन के अतिरिक्त गाँधीवाद का सब से मुख्य प्रतिनिधि रहा है, राष्ट्रीय संस्था के नाम से पुकारा जाने वाला देश का सब से बड़ा राजनैतिक संगठन, 'कांग्रेस'। गांधीवाद के आदर्श और नीति को साधन बना कर कांग्रेस ने इस देश का कैसा कल्याण किया है और देश की कितनी उन्नति कर सकेगी, यह जानने के लिये स्वयं कांग्रेस के संगठन पर ही गांधीवाद का प्रभाव देखना उचित होगा।

गांधीवाद के आध्यात्मिक सत्य-अहिंसा के आदर्श ने कांग्रेसजनों की कितनी आध्यात्मिक उन्नति की है; उन में सत्य और अहिंसा की ओर कैसी प्रवृत्ति पैदा की है; इस विषय में गांधीवाद के सब से प्रमाणिक नेता और गांधी जी के पश्चात् उन के मुख-पत्र 'हरिजन' के सम्पादक श्री किशोरीलाल घनश्यामदास मशरुवाला का २३ अगस्त १९५० के नेशनल हेरल्ड में प्रकाशित वक्तव्य ही सब से अधिक विश्वास योग्य और निर्विवाद हो सकता है। सन १९५० में कांग्रेस के नवीन प्रधान के चुनाव के अवसर पर उन का वक्तव्य था:—

"मेरी सम्मति में आचार और नैतिकता की दृष्टि से इस संगठन का इतना पतन हो गया है कि ईमानदार व्यक्तियों को इस से सम्बंध विच्छेद कर लेना उचित है। रचनात्मक कार्य में भाग लेने वाले यदि कुछ कर सकते हैं तो यह कि उन्हें प्रधान मंत्री को सहायता देने के लिये ऐसे कांग्रेस-प्रधान का निर्वाचन करना चाहिए जो अपनी पूरी शक्ति लगा कर कांग्रेस में भर गयी

वेईमानी, गुण्डागिरी, साम्प्रदायिकता और स्थानीय पक्षपात की गुट्टबन्दी को दूर कर सके।" यह है एक अत्यन्त गांधीवादनिष्ठ, गांधीवादी नेता का वक्तव्य उस संस्था के विषय में जो गांधीवाद के साधन से न केवल इस देश का, बल्कि सम्पूर्ण संसार का कल्याण सत्य अहिंसा की नैतिकता से करने का बीड़ा उठाकर चली थी। यदि गांधीवादियों की दृष्टि में गांधीवाद की समर्थक कांग्रेस का स्वयम ही इतनी जल्दी ऐसा भयंकर पतन हो गया है तो कांग्रेस द्वारा चलायी जाने वाली सरकार की अवस्था इस से बेहतर नहीं, बदतर ही है। कांग्रेस के इस पतन की जिम्मेवारी से गांधीवाद मुक्त नहीं हो सकता।

कुछ गांधीवादी नेताओं का यह कह देना कि कांग्रेस-जन और कांग्रेस-सरकार गांधीवाद का मार्ग छोड़ चुके हैं, गांधीवाद को कांग्रेस के पतन की जिम्मेवारी से बरी नहीं कर सकता। कांग्रेस की सफलता का श्रेय गाँधीवाद को हो और कांग्रेस के पतन की जिम्मेवारी कांग्रेस जनों की व्यक्तिगत कमजोरी को मान लेना युक्ति संगत नहीं। किसी भी सिद्धान्त या वाद का परिणाम जानने का यही उपाय है कि उस सिद्धान्त के अनुयायी लोगों की मनोवृत्ति और व्यवहार पर उस वाद का प्रभाव देखा जाय। यह कह देना कि जनता गांधीवाद के मार्ग से गिर गयी है, निरर्थक है। गांधीवाद के अनुयायियों की मनोवृत्ति और कर्त्तव्य बुद्धि को ऊंचा उठा सकने में असफल क्यों रहा? कांग्रेसी लोग गांधीवाद को अपना स्वार्थ पूरा करने का साधन क्यों बना रहे हैं? और गांधीवाद जन विरोधी, जनता के रक्त से पुष्ट होने वाली श्रेणी के ही हाथ का साधन क्यों बन गया? अपने श्रम से समाज के लिये आवश्यक पदार्थों की पैदावार करने वाली श्रेणी गांधीवाद से निराश क्यों हो गयी है? श्री मशरूवाला के कथनानुसार आज यदि कांग्रेस में साम्प्रदायिक गुंडे, वेईमान और चेलापरस्त भर गये हैं तो इस का कारण यही है कि कांग्रेस ऐसी ही पतनशील श्रेणी के व्यक्तियों के स्वार्थ को पूर्ण करने का साधन बन सकती थी; गांधीवाद के सिद्धान्तों और आदर्श की वास्तविकता यही थी। गांधीवाद के प्रमुख नेता आचार्य कृपलानी ने अपने पत्र 'विजिल' जुलाई १९५० में कांग्रेसी शासन की धांधलियों के प्रति खिन्नता प्रकट करते हुए लिखा था"......."यदि चीन में च्यांग सरकार का शासन समाप्त होकर जनवादी सरकार स्थापित होते ही चीनी सरकार का प्रसिद्ध अनाचार, वेईमानी और दमन समाप्त हो कर वहाँ न्याय, सुव्यवस्था और ईमानदारी से प्रजा के संतोष की व्यवस्था हो

गयी है तो कांग्रेसी सरकार के शासन में यह सब क्यों नहीं हो सकता ?" इस प्रश्न का उत्तर देना चाहिये कांग्रेस के गांधीवादी आदर्श और कार्यक्रम को !

उत्तर सीधा है कि चीन में आध्यात्मिकता का खोल चढ़ा कर पतनशील पूंजीवादी शोषक व्यवस्था को पनपने और शक्ति संचय का अवसर नहीं दिया गया। चीन में जनता का शासन भौतिक सत्य की कसौटी पर खरी उतरने वाली जनवादी नैतिकता के आधार पर चल रहा है। वहाँ सत्य और अहिंसा को जनता द्वारा समझी न जा सकने वाली ईश्वरीय-प्रेरणा की गोली बना कर जनता के गले से नहीं उतारा जाता। वहाँ सत्य और अहिंसा का निर्णय जनता स्वयं अपने हित और कल्याण के तराजू पर तौल कर करती है। चीन में गांधीवाद के पर्दे में पूंजीवादी नैतिकता का शासन नहीं, समाजवादी नैतिकता की व्यवस्था स्थापित हो रही है।

गांधीवाद के कुछ भक्तों का कहना है कि कांग्रेस और कांग्रेसी सरकार के नैतिक पतन का कारण यह है कि इन दोनों ने गांधीवाद के आदर्शों को छोड़ दिया है। कांग्रेसी सरकार ने कभी भी गांधीवाद से अपना विश्वास हट जाने की या गांधीवादी कार्यक्रम को छोड़ देने की घोषणा नहीं की। विदेशी शासन का अंकुश सिर पर से हट जाने के बाद कांग्रेस के नेताओं और कांग्रेसी सरकार को इस बात का अवसर मिल गया है कि वे अपने वास्तविक प्रयोजन और उद्देश्य को निरंकुशता से पूरा कर सकें। ऐसा अवसर आने पर गांधी-वाद के मूल उद्देश्यों के परिणाम अपने पूरे रूप में जनता के सामने आ रहे हैं।

गांधीवादी और कांग्रेसी शासन में प्रजा की दशा उत्तरोत्तर क्यों गिरती जा रही है ? पूंजीपति श्रेणी का निरंकुश शासन और शोषण क्यों बढ़ रहा है ? इन प्रश्नों का एक ही उत्तर है कि गांधीवाद देश की जनता के जीवन का संकट दूर करने और सार्वजनिक मुक्ति और उन्नति की दृष्टि से क्रियात्मक नहीं था, न है। गांधी जी के व्यक्तिगत रूप से निस्वार्थ और त्यागमय जीवन का आदर्श स्वीकार कर लेने पर भी गांधीवाद के त्याग और सत्य-अहिंसा के उपदेश की नींव में जनता के शोषण को न्याय मानने वाली नैतिकता छिपी हुई थी। गांधीवाद जनता के शासकों और शोषकों से जनता के प्रति दया दिखाकर उन्हें जनता के विरोध से बचने का उपदेश तो देता था परन्तु जनता के आत्मनिर्णय का अधिकार पाने की बात नहीं कहता था। गांधीवाद ऐसी

नैतिकता और न्याय का समर्थन कर रहा था जो समाज में आ गये परिवर्तनों के कारण पूंजीपति श्रेणी के जनविरोधी अधिकारों का रूप ले चुके थे।

देश के शासन के सम्बन्ध में गांधीवादी नीति को क्रियात्मक रूप देने के प्रश्न पर स्वयम् गांधीवाद के समर्थकों और प्रचारकों में ही मतभेद दिखाई देने लगा है। आचार्य कृपलानी और पं० जवाहरलाल नेहरू और श्री वल्लभ भाई पटेल का राजनैतिक मतभेद उस का एक उदाहरण है। गांधीवाद के कुछ आचार्यों का कहना है कि भारतीय सरकार गांधीवादी नीति के अनुसार संगठन के साम्यवादी पुनःनिर्माण के कार्यक्रम को तिलांजली दे चुकी है। दूसरी ओर सरकारी सिंहासन पर बैठे गांधीवादी नेताओं का कहना है कि उन की शासन व्यवस्था रामराज्य के मौलिक सिद्धान्तों या गांधीवादी राजनीति के ही अनुरूप है।

भारतीय सरकार द्वारा गांधीवादी नीति के अनुसार देश के शासन का परिणाम देश की प्रजा के सामने है। आर्थिक रूप से प्रजा का संकट इतना अधिक बढ़ रहा है कि प्रजा विदेशी शासन से स्वतंत्रता का उत्साह अनुभव करने के बजाय अपने आप को पहले से अधिक हतभागा समझ रही है। यदि अदालतों में अपराध प्रमाणित किये बिना पचीस-तीस हज़ार आदमियों को जेलों में भर देना, जेलों में लाठी-गोली चलाना, राजनैतिक कैदियों को जेल की कोठड़ियों में बन्द करके पीटना, स्त्री राजनैतिक कैदियों के बाल पकड़ कर खींचना और देहातों में राजनैतिक आन्दोलन करने वालों के घरबार लूट कर जला देना, कम्यूनिस्ट समझे जाने वाले किसानों के सिर पर लाल कपड़े की धज्जियां कीलों से गाड़ देना, नगरों में सभा आदि करने के अधिकार छीन लेना हिंसा कहा जा सकता है तो देश में हिंसा का प्रयोग भी अंग्रेज़ी राज की अपेक्षा आज बहुत अधिक दिखाई दे रहा है। गांधीवादी-कांग्रेसी राज में पुलिस की संख्या और अधिकार अंग्रेज़ी राज की अपेक्षा कहीं अधिक बढ़ते जा रहे हैं। पुलिस प्रेम और अहिंसा द्वारा हृदय परिवर्तन का साधन नहीं, सशस्त्र दमन का ही साधन है।

विदेशी शासन से मुक्त होकर नागरिक स्वतंत्रता अनुभव करने की बात तो दूर रही, कांग्रेसी राज में इस विषय पर विचार प्रकट करना भी साहस का प्रदर्शन समझा जा रहा है। कांग्रेस के राष्ट्रीय स्वतंत्रता के आन्दोलन से परिचत लोगों को यह भूला न होगा कि सन १९१९ में भारतीय ब्रिटिश सरकार द्वारा 'रौलेट-कानून' जारी किये जाने पर जब कांग्रेस ने इस कानून का विरोध किया था तभी कांग्रेस के आन्दोलन को देश की जनता का सहयोग मिला था

और कांग्रेस कुछ अंग्रेजी बोलने वाले सफ़ेदपोश लोगों की संस्था की सीमा तोड़ कर सार्वजनिक संस्था बन गई थी। रौलेट कानून द्वारा अंग्रेज़ी सरकार ने बिना स्पष्ट अपराध बताये गिरफ्तारी, तलाशी कर सकने और अपराध प्रमाणित किये बिना लोगों को जेल में बन्द कर देने के अधिकार अपनी नौकरशाही को दिये थे। रौलेट-कानून को कांग्रेस ने दमनकारी 'काला कानून' कह कर इस का विरोध किया था। इस काले कानून का विरोध करने के लिये देश की जनता ने ब्रिटिश सरकार के अमानुषिक अत्याचार और दमन का सामना किया था। अमृतसर में जालियांवाला बाग का हत्याकांड हुआ, शोलापुर में गोली चली, गुजरांवाला में सरकार ने विमान से बम फेंक कर जनता का दमन किया और प्रायः पूरे पंजाब में फौजी कानून जारी किया गया था। आज कांग्रेसी सरकारों द्वारा लागू किये गये 'शांति और सुरक्षा' कानून रौलेट-कानून की अपेक्षा कहीं अधिक उच्छृंखल निरंकुश दमन का अधिकार अपनी नौकरशाही को दे रही है। आज हजारों राजनैतिक कार्यकर्त्ता अदालत में अपराध प्रमाणित हुए बिना जेलों में बन्द हैं। हाईकोर्ट उन के जेल में बन्द रखे जाने को अनुचित और अन्यायपूर्ण घोषित कर इन राजनैतिक बन्दियों की रिहाई की आज्ञा दे देते हैं परन्तु कांग्रेसी सरकार उन्हें जेल से निकाल नजरबन्द कर देती है। यह सब कारनामे करके भी कांग्रेसी सरकारें आज भी गांधी जी के नाम की दुहाई देकर, अपने आप को गांधीवाद की अहिंसात्मक नीति का उत्तराधिकारी बता कर प्रजा से अपने प्रति विश्वास और सहयोग की मांग कर रही है।

कांग्रेसी सरकारों के शासन काल में देश की पूंजीपति श्रेणी को मुनाफा कमाने की खुली छूट मिल गई है। लूट की छूट के कारण देश में विकट आर्थिक संकट की अवस्था पैदा हो गई है। धांधली और दमन का ज्वार सा आ गया है और प्रजा निराशा अनुभव कर रही है; कांग्रेसी सरकारों का शासन जनता के लिये असह्य हो गया है। यदि विरोध की सबल आवाज नहीं सुनाई देती तो उस का कारण वामपक्ष में उचित नेतृत्व का अभाव है। अपने शासन के प्रति जनता का विश्वास और श्रद्धा बनाये रखने के लिये कांग्रेसी-सरकारें गांधी जी के नाम और गांधीवाद का आश्रय ले रही हैं। कांग्रेसी सरकार जनता को यह विश्वास दिलाना चाहती है कि उन का शासन गांधीवादी नीति के अनुसार रामराज्य की व्यवस्था है इसलिये उन का शासन संसार में सर्वोत्तम शासन व्यवस्था है और जनता के लिये सब से अधिक कल्याणकारी है। इस सरकार

को और इस सरकार की शासन व्यवस्था को बदलने का यत्न करना हिंसा का प्रयत्न है और गांधीवाद के प्रति विद्रोह है। कांग्रेसी-सरकार अपने प्रति जनता का विश्वास बनाये रखने के लिये और जनता को किसी दूसरे राजनैतिक तथा आर्थिक कार्यक्रम द्वारा अपने संकटों का उपाय करने की बात सोचने का अवसर न देने के लिये जनता को गांधी जी की जय की गूंज से बहरा किये हुए हैं।

कांग्रेसी सरकार के नेता अपने आपको गाँधीवाद का मुख्य पंडा समझते हैं। गाँधीवाद के अतिरिक्त और कोई बात सोचने का अवसर वे जनता के सामने नहीं आने देना चाहते इसलिये स्कूल के बच्चों को अक्षर-ज्ञान के समय से ही गांधी जी और कांग्रेसी नेताओं के चित्रों से चकाचौंध कर देने की सरकारी आयोजना बना दी गयी है। सरकार के हुक्म से बच्चों के लिये छपाई जाने वाली प्रारम्भिक पुस्तकों में गांधी जी के कई-कई चित्रों का होना अनिवार्य करार दे दिया गया है। सब से बड़ा मजाक तो यह है कि अदालतों में अपराधियों को जेल और फांसी की सजा देने वाले जजों के सिर पर भी अहिंसा और प्रेम के अवतार बताये जाने वाले गांधी जी के चित्र लटके रहते हैं; शायद इन चित्रों के प्रभाव से जेल और फांसी की सजा के हुक्मों को भी अहिंसा और प्रेम की भावना समझा दिया जाने का प्रयोजन पूरा होता है। यहाँ तक कि बन्दी-गृहों में भी स्वतंत्रता के देवता गांधी जी के ही चित्र लटका दिये गये हैं। ब्रिटिश सरकार के शासन काल में जनता में अटूट राजभक्ति की भावना भर देने के लिये जो काम ब्रिटिश साम्राज्य के शाहनशाह के नाम और चित्र से लिया जाता था, वही काम कांग्रेसी सरकारें गांधी जी के नाम और चित्र से ले रही हैं। कांग्रेसी-सरकारों की नीति और कार्यक्रम से जो असंतोष जनता में फैल रहा है, उस से रक्षा का उपाय कांग्रेसी-सरकारों को गांधी जी के नाम और गांधीवाद के प्रचार में ही दिखाई देता है।

कांग्रेसी सरकार का शासन वास्तव में गांधीवाद के मौलिक सिद्धांतों के अनुसार है या नहीं ? यदि शासन गांधीवाद के सिद्धान्तों के अधिक अनुकूल हो जाये तो जनता भविष्य में उस से क्या आशा रख सकती है; देश की अन्य आर्थिक, सामाजिक और नैतिक समस्याओं का समाधान गांधीवाद के अनुकूल किस प्रकार हो सकता है; इन प्रश्नों के विवेचन के लिये गांधीवाद के व्यवहारिक रूप और सिद्धांतों का समुचित परिचय अत्यन्त आवश्यक है।

गांधीवादी सत्य-अहिंसा का तत्व

गांधी जी ने अपने कार्यक्रम और विचार-धारा पर प्रकाश डालने के लिए अपने पत्र 'हरिजन बन्धु' (२६-३-१६३६) में गांधीवाद का परिचय स्वयं इन शब्दों में दिया था: —

"गांधीवाद नाम की कोई वस्तु है ही नहीं, न मैं अपने पीछे कोई सम्प्रदाय छोड़ जाना चाहता हूँ। मेरा यह दावा भी नहीं कि मैंने किसी नये तत्व या सिद्धांत का आविष्कार किया है। मैंने तो सिर्फ जो शाश्वत सत्य है, उस को अपने नित्य के जीवन और प्रतिदिन के प्रश्नों पर अपने ढंग से उतारने का का प्रयास-मात्र किया है। मुझे दुनिया को कोई नयी चीज नहीं सिखानी है। सत्य और अहिंसा अनादिकाल से चले आये हैं.......

"उपर जो कुछ मैंने कहा है, उस में मेरा सारा तत्वज्ञान—यदि मेरे विचारों को इतना बड़ा नाम दिया जा सकता है, तो—समा जाता है। आप उसे गांधीवाद न कहें, क्योंकि उसमें वाद जैसी कोई बात नहीं।"

गांधी जी ने अपने जीवन में विनय और त्याग को ही जीवन का आदर्श घोषित किया था। उन्हें यह विनय ही शोभा देता था कि वे अपने सिद्धान्तों के साथ अपना व्यक्तिगत नाम न लगने का ही आग्रह करें। अपने सिद्धान्तों को प्राचीन ऋषियों का उपदेश बता देने पर प्राचीन भारत के गौरव में अन्ध श्रद्धा रखने वालों को अपने कार्यक्रम की ओर आकर्षित करने की सुविधा भी थी। परन्तु गांधी जी के अनुयायी और उन के सिद्धान्तों का समर्थन करने वालों ने गांधी जी द्वारा समर्थित पुराने चले आये सिद्धान्तों को गांधीवाद का नाम निश्चित रूप से दे कर इन सिद्धान्तों के लिये जनता का विश्वास और

समर्थन पाने की चेष्टा की है। यद्यपि गांधी जी ने विनय के विचार से, अपने २९-३-३६ के लेख में अपने विचारों को गाँधीवाद का नाम न दिया जाने का विनीत आग्रह किया था परन्तु कराँची कांग्रेस के मौके पर (२५-३-३१) अपने कार्यक्रम का विरोध करने वालों को उत्तर देते समय उन्होंने बलपूर्वक यह घोषण भी की थी—"गांधी मर सकता है परन्तु गाँधीवाद अमर रहेगा।"* गाँधी जी की इस घोषणा के अनुसार उन के विनय को ध्यान में रखते हुए भी गाँधीवाद शब्द का प्रयोग गाँधी जी के सिद्धान्तों के प्रति अनुचित नहीं समझा जा सकता।

सत्य और अहिंसा द्वारा मनुष्य-समाज में सुख शान्ति और न्याय की स्थापना होनी चाहिये, इस विषय में तो सभी सम्प्रदाय सिद्धान्त और राजनैतिक कार्य-क्रम सहमत हैं। सत्य और अहिंसा क्या है? और परिस्थितियों को दृष्टि में रख कर सत्य-अहिंसा को किस प्रकार लागू किया जा सकता है, इसी विषय में भारी मतभेद हो जाता है। अपने जीवनकाल में गाँधी जी का और उन की मृत्यु के पश्चात् उन के अनुयायियों का दावा है कि भारत के दुख, दरिद्रता, विषमता और अशान्ति का उपाय केवल गाँधीवाद के सत्य और अहिंसा द्वारा ही हो सकता है। इस से भी अधिक, गांधीवाद का दावा है कि संसार भर में फैली हुई अशान्ति और विषमता का उपाय केवल सत्य-अहिंसा की गाँधीवादी धारणा और गांधीवाद द्वारा प्रतिपादित नैतिकता से ही हो सकता है।

गांधीवाद की धारणा है कि संसार-व्यापी अशान्ति और विषमता का कारण व्यक्तियों और समाज के स्वभाव के दुर्गुण लोभ, स्वार्थ और हिंसा की वृत्ति हैं। इन दुर्गुणों का कारण भौतिक संस्कृति (Materialist Culture) को जीवन का मार्ग मान लेना और जीवन की सांसारिक सफलता को आदर्श लक्ष समझ लेना है। भौतिक के लिये प्रभाव से आर्थिक और राजनैतिक संघर्षों में फंसने के कारण ही भारत का पतन हुआ और यह देश दासता के जुए में फंस कर विवश हो गया। शेष संसार भी इस भौतिक संस्कृति के लोभ, स्वार्थ, हिंसा और स्पर्धा और संघर्ष का ही शिकार होकर आत्मसंहार से नष्ट हो रहा है। जीवन के लक्ष को प्राचीन आध्यात्मिक संस्कृति के अनुकूल स्वीकार करने से ही भारत और सम्पूर्ण संसार का कल्याण हो सकता है।

---

* कांग्रेस का इतिहास पृ० ४६०

गांधीवादियों को यह सुनकर विस्मय होगा कि भौतिकवाद भी संस्कृति और सभ्यता का उद्देश्य समाज से हिंसा, विषमता और अशान्ति दूर रखना ही समझता है। परन्तु भौतिकवाद यह नहीं मानता कि समाज के व्यक्तियों के व्यवहार उस के समाज की आर्थिक परिस्थितियों से स्वतंत्र हैं और समाज में दिखाई देने वाले असत्य और अहिंसा केवल व्यक्तियों के गुण-दोष जन्मजात और प्राकृतिक स्वभाव के कारण होते हैं। भौतिकवाद समाज में हिंसा, विषमता और अशान्ति का कारण समाज के व्यक्तियों की आर्थिक और भौतिक परिस्थितियों को मानता है। भौतिकवाद समाज से हिंसा, विषमता और अशान्ति को दूर करने के लिये समाज की आर्थिक परिस्थितियों में से ऐसे कारणों को दूर कर देना आवश्यक समझता है जिन से हिंसा, विषमता और अशान्ति उत्पन्न होती है। भौतिकवाद समाज की व्यवस्था और परिस्थितयों को शाश्वत नहीं मानता। उस का मत है कि समाज में व्यक्तियों के सम्बन्ध और व्यवहार बदलते रहते हैं और इन परिवर्तनों के अनुकूल समाज में सत्य-अहिंसा और न्याय की धारणा भी बदल जाती है। मनुष्य-समाज का इतिहास ऐसे परिवर्तन के उदाहरणों से भरपूर है।

गांधीवाद की दृष्टि में सत्य, अहिंसा और न्याय का आधार मनुष्य समाज की परिस्थितियां और मनुष्य-समाज का अपना निर्णय नहीं बल्कि आध्यात्मिक ज्ञान और ईश्वर की शाश्वत, सत्य प्रेरणा है। मानव जीवन का उद्देश्य सांसारिकता से मुक्ति पाकर आध्यात्मिक उन्नति से मृत्यु के पश्चात् परलोक में जाकर ईश्वर के विराट् अस्तित्व में मिल जाना है। गांधीवाद मानव जीवन के इस पारलौकिक उद्देश्य को ही जीवन का लक्ष मान कर समाज में व्यक्ति और समाज की नैतिक, आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्था का ढांचा निश्चित करना चाहता है।

भौतिकवाद सत्य और अहिंसा का आधार मनुष्य-समाज के आर्थिक सम्बन्धों को ही मानता है। वह समाज की मानसिक, आर्थिक और भौतिक सफलता को ही समाज के कल्याण की कसौटी मानता है। इस के विपरीत गांधीवाद मनुष्य के कल्याण के लिये आर्थिक और भौतिक सांसारिक समृद्धि को गौण और आध्यात्मिक उन्नति तथा भगवान के सामीप्य को मुख्य समझता है।

सत्य और अहिंसा क्या है? इन के निरूपण और निश्चय का आधार क्या होना चाहिये? इस बात पर विचार करने के लिये यह जानना आवश्यक है

कि सत्य-अहिंसा की आवश्यकता हम क्यों अनुभव करते हैं और सत्य-अहिंसा का प्रयोजन क्या है ? व्यक्ति और समाज के जीवन का उद्देश्य और लक्ष्य सत्य-अहिंसा का पालन है अथवा उद्देश्य व्यक्ति और समाज के जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति और विकास है और सत्य-अहिंसा इस के लिये साधन है।

गांधीवाद के मत से सत्य-अहिंसा नित्य तथा शाश्वत है और समाज और व्यक्ति अनित्य और नश्वर ? सत्य-अहिंसा का पालन व्यक्ति और समाज के जीवन का लक्ष और उद्देश्य है। व्यक्तिगत दृष्टि से सत्य-अहिंसा के पालन का उद्देश्य आध्यात्मिक उन्नति द्वारा परलोक में मोक्ष की प्राप्ति है और सामाजिक दृष्टि से सत्य-अहिंसा के पालन का उद्देश्य और लक्ष रामराज्य की व्यवस्था या पूर्ण और शाश्वत न्याय और सत्य, अहिंसा की स्थापना करना है।

यदि हम गांधीवाद के अनुसार सत्य-अहिंसा को व्यक्ति और समाज के जीवन का उद्देश्य स्वीकार कर लें तो भी यह मानना पड़ेगा कि सत्य और अहिंसा मनुष्यों के व्यक्तिगत और सामाजिक कल्याण का साधन हैं। गांधी-वाद के अनुसार सत्य और अहिंसा से मनुष्य-समाज का कल्याण तो होता है परन्तु सत्य और अहिंसा के रूप का निश्चय मनुष्य-समाज नहीं करता, इन का निश्चय ईश्वर की प्रेरणा से हुआ है। सत्य और अहिंसा अपरिवर्तनशील अर्थात् शाश्वत हैं और इन का मुख्य उद्देश्य इस लोक के बन्धनों से मुक्त होकर परलोक में भगवान की प्राप्ति और आत्मा की मुक्ति है।

हम मनुष्य-समाज के इतिहास, अनुभव और नित्य जीवन के व्यवहार में सत्य अहिंसा का उपयोग और निर्णय किस प्रकार होता देखते हैं ? यदि हम भूमि के किसी ऐसे टुकड़े या द्वीप की बात सोचें जहाँ मनुष्य की आबादी नहीं है, तो उस स्थान पर हम ईश्वरीय प्रेरणा से सत्य और अहिंसा के नियमों के व्यवहार में आने के कल्पना नहीं कर सकेंगे। यदि ऐसे निर्जन स्थान या द्वीप में कोई अकेला आदमी जाकर बस जाता है, जैसा कि राबिनसनक्रूसो की प्रसिद्ध कहानी में हम पढ़ते हैं, तो इस अकेले व्यक्ति के लिये भी सत्य और अहिंसा के नियमों के निर्णय और व्यवहार का कोई अवसर नहीं हो सकता। अर्थात् सत्य-अहिंसा का अस्तित्व मनुष्य-समाज के बिना नहीं हो सकता। कोई अकेला व्यक्ति भी सत्य-अहिंसा का प्रयोग नहीं कर सकता। सत्य-अहिंसा का प्रयोग केवल सामाजिक रूप में ही हो सकता है। सत्य-अहिंसा व्यक्तिगत वस्तु नहीं सामाजिक व्यवहार की वस्तु है। व्यक्ति सत्य और अहिंसा की धारणाओं को

ईश्वरीय प्रेरणा द्वारा नहीं अपने समाज से ही ग्रहण करता है। यदि कोई व्यक्ति सत्य अहिंसा के व्यवहार से अपनी आध्यात्मिक उन्नति करके परलोक में अपनी आत्मा की मुक्ति चाहता है, तो भी समाज में सत्य-अहिंसा का व्यवहार समाज द्वारा स्वीकृत नियमों के अनुसार ही होना आवश्यक है।

यह स्वीकार कर लेने पर कि सत्य-अहिंसा को हम समाज के जीवन में, मनुष्यों के परस्पर व्यवहार में ही अनुभव कर सकते हैं, यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि सत्य और अहिंसा इस लोक अर्थात् भौतिक जगत में समाज के परस्पर व्यवहार के ही नियम हैं।

समाज में व्यक्तियों को परस्पर व्यवहार की आवश्यकता क्यों होती है; समाज में परस्पर व्यवहार का आधार क्या है ? उत्तर में यह नहीं कहा जा सकता कि व्यक्ति भगवान को प्राप्त करने के लिये या जीवन से मुक्ति पाने के लिये परस्पर व्यवहार और सहयोग करते हैं। भगवान और मुक्ति को पाने का प्रश्न मृत्यु के पश्चात् परलोक में आता है जहाँ मनुष्य अकेला ही जाता है, सामाजिक रूप से नहीं जाता। समाज में व्यक्तियों को परस्पर व्यवहार और सहयोग इसलिए करना पड़ता है कि समाज के सभी व्यक्ति अपने जीवन की रक्षा के लिये एक दूसरे पर निर्भर करते हैं। जीवन रक्षा के लिये आवश्यक पदार्थों को उत्पन्न करने और उन्हें परस्पर बांटने के लिये ही समाज के व्यक्तियों का एक दूसरे से सम्बन्ध और व्यवहार है। समाज में सब व्यक्तियों का निर्वाह हो सके, समाज के व्यक्तियों के परस्पर सम्बंध और व्यवहार इस प्रकार चलें कि समाज बिखर न जाये, समाज का नाश न हो जाये इसीलिये व्यक्तियों के परस्पर व्यवहार और सम्बंध के नियम समाज में बनाये जाते हैं। इन नियमों को ही सत्य-अहिंसा समझा जाता है।

मनुष्य-समाज में व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बंध और व्यवहार के नियम जीवन रक्षा के लिये आवश्यक पदार्थों की उत्पत्ति और बंटवारे की उचित व्यवस्था करने और परस्पर सहयोग द्वारा जीवन की रक्षा करने के लिये बनाये जाते हैं। जीवन रक्षा के लिये आवश्यक और उपयोगी पदार्थ और सुविधायें तथा व्यवस्था इसी संसार की वस्तुयें हैं; वे दुनिया के भौतिक तथ्य हैं, आध्यात्मिक तथ्य नहीं। इसलिये समाज के इन सम्बन्धों को मूलतः भौतिक या आर्थिक सम्बन्ध ही कहा जायगा, आध्यात्मिक और शाश्वत ईश्वर का अंश नहीं। इन सम्बन्धों को निश्चित करने वाले नियम अर्थात् सत्य-अहिंसा भी

दुनियावी या आर्थिक और भौतिक होंगे, समाज की आर्थिक और भौतिक परिस्थितियों से अलग ईश्वर का अंश अथवा आध्यात्मिक नहीं। आर्थिक सम्बंध या अर्थ शब्द से केवल रुपये-पैसे का ही अभिप्राय नहीं है बल्कि जीवन रक्षा की सब परिस्थितियों और साधनों को और मानसिक संतोष प्राप्त कर सकने के अवसर और सुविधा से है। हिन्दू संस्कृति के प्राचीन ग्रन्थों में भी धर्म और मोक्ष के साथ काम और अर्थ शब्द का प्रयोग जीवन को भौतिक वास्तविकता और सम्भावना के रूप में ही किया गया है। रुपये पैसे के लिए अर्थ शब्द का व्यवहार इसलिये होता है कि रुपया-पैसा समाज में जीवन निर्वाह की व्यवस्था को निवाहने का सबसे अधिक विकसित साधन है।

भौतिकवाद का मत है कि मनुष्य-समाज की व्यवस्था आर्थिक आधार पर बनती है। समाज के विकास के क्रम को आर्थिक परिस्थितियां निश्चित करती हैं और समाज के व्यक्तियों के व्यवहार और विचारों का आधार भी आर्थिक होता है। इस का अभिप्राय यह नहीं है कि भौतिकवाद के मत से समाज और व्यक्तियों के जीवन में रुपये पैसे के लिये छीना झपटी ही उन के दृष्टिकोण का निश्चय करती है। इस का अर्थ यह है कि व्यक्ति और समाज के विचार और दृष्टिकोण उन के जीवन के अस्तित्व से भिन्न और स्वतंत्र नहीं हो सकते। जिन भौतिक परिस्थितियों और जैसी आर्थिक व्यवस्था में व्यक्ति और समाज का जीवन बनता है उन्हीं के अनुकूल अनुभवों से उन के विचार और दृष्टिकोण बनते हैं। व्यक्ति और समाज का मुख्य लक्ष व्यक्ति और समाज की रक्षा और उन्नति ही है। ऐसे आदर्श और उद्देश्य के लिये कभी-कभी व्यक्ति निजी स्वार्थ या अपने प्राण भी त्याग देता है परन्तु ऐसी अवस्था में भी त्याग का उद्देश्य सामाजिक भौतिक और आर्थिक ही होता है।

मनुष्य-समाज के जीवन की व्यवस्था का सम्पूर्ण आधार भौतिक है। भौतिक साधनों के उपयोग से समाज का जीवन निर्वाह चलाने का जो प्रबन्ध किया जाता है, और इस काम के लिये व्यक्तियों के जो सम्बन्ध कायम होते हैं उन्हें समाज की आर्थिक व्यवस्था कहा जाता है। इस आर्थिक व्यवस्था को नियमित रूप से चलाने के लिये जो नियम स्वीकार कर लिये जाते हैं उन्हें ही सत्य और अहिंसा कहा जाता है। अतः सत्य-अहिंसा के नियम मनुष्य समाज की आवश्यकताओं और परिस्थितियों के अनुकूल भौतिक तथा आर्थिक व्यवस्था के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकते।

मनुष्य के श्रम द्वारा भौतिक पदार्थों से पैदा किये गये उपयोगी पदार्थ और भविष्य में इन पदार्थों को पैदा करने के लिये मनुष्य के श्रम से बनाये गये साधन ही सम्पत्ति हैं। मनुष्य-समाज में सत्य और अहिंसा के नियमों का केन्द्र अर्थ या सम्पत्ति की रक्षा ही है। आर्थिक और भौतिक साधन, अर्थात् सम्पत्ति ही जीवन का आधार है। समाज में व्यवस्था का अर्थ सम्पत्ति की रक्षा के नियमों को लागू करके समाज के क्रम की रक्षा करना ही है।

सभी धर्मों और सम्प्रदायों में सत्य और अहिंसा का मूल मंत्र—दूसरे के धन को न लेना है। मनुष्य अकारण ही असत्य और हिंसा का प्रयोग नहीं करता। सम्पूर्ण असत्य और हिंसा का कारण जीवन के लिए आवश्यक पदार्थों, सुविधाओं और अवसरों अर्थात् सम्पत्ति के सम्बन्ध में झगड़ा होना है। इन झगड़ों को मिटानें और दूर रखने के लिये ही शासन-व्यवस्था अर्थात् सत्य और अहिंसा की रक्षा का महत्व रहता है। शासन-व्यवस्था और सत्य-अहिंसा की रक्षा दो पृथक वस्तुयें नहीं हैं।

व्यवस्था का अर्थ है कि समाज निश्चित नियमों के अनुसार चले और समाज में एक ऐसी शक्ति मौजूद हो जो इन नियमों को अपनी ताकत से मनवा सके। बिना शक्ति के व्यवस्था नहीं चल सकती। शक्ति प्रयोग से व्यवस्था कायम करना अर्थात् समाज द्वारा मान लिये गये सत्य-अहिंसा के नियमों को मनवाना ही शासन या सरकार का रूप है।

यदि समाज में सब लोगों की स्थिति एक सी हो या सब लोग समान रूप से सामर्थ्यवान हों तो समाज की व्यवस्था और शासन (सत्य-अहिंसा) सब लोगों के समान निर्णय, सर्वसम्मति या बहुमत से होगा। यदि समाज में कुछ लोग निर्बल और कुछ लोग सामर्थ्यवान होंगे तो व्यवस्था और शासन (सत्य-अहिंसा) का निर्णय सामर्थ्यवान या सबल लोगों की इच्छा के ही अनुकूल होगा।

समाज में सामर्थ्य और शक्ति का आधार मुख्यत: शारीरिक बल नहीं हो सकता। केवल शारीरिक बल से सामर्थ्य का निर्णय पशुओं में ही होता है, क्योंकि पशु अपने जीवन के साधनों और अवसर के लिये दूसरे पर निर्भर नहीं करते। पशु अपने जीवन के लिये आवश्यक पदार्थों को परस्पर सहयोग से स्वयं नहीं उत्पन्न करते। वे अपनी सामाजिक व्यवस्था और पैदावार के साधनों पर निर्भर नहीं करते। मनुष्य पैदावार के साधनों और समाज की व्यवस्था पर निर्भर करता है इसलिये समाज में व्यक्ति का सामर्थ्य उस के वश

में साधनों और समाज के दूसरे व्यक्तियों से उस के सम्बन्धों पर निर्भर करता है, उस के शारीरिक वल पर नहीं। हम अपने समाज में नित्य ही देखते हैं कि शारीरिक शक्ति से अधिक परिश्रम कर सकने वाले नौकर-चाकर और मज़दूर लोगों का सामर्थ्य और प्रभाव समाज में कम होता है और शारीरिक रूप से निर्वल धनी लोगों की शक्ति और प्रभाव अधिक होता है। पैदल न चल सकने के कारण रिक्शा या पालकी पर ढोये जाने वाले सेठ या साहव उन्हें सशरीर उठाकर दौड़ सकने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सामर्थ्यवान और सशक्त समझे जाते हैं क्योंकि वे साधनवान हैं, आर्थिक रूप से वलवान हैं।

जिस समाज में पैदावार के साधनों या सम्पत्ति पर समाज का साझा अधिकार होगा, उस समाज में समाज की व्यवस्था (सत्य-अहिंसा) निर्णय करने का समान अवसर सभी व्यक्तियों को होगा और समाज की व्यवस्था चालू रखने में भी सभी व्यक्तियों का समान दखल हो सकेगा। समाज में पैदावार के साधन यदि कुछ थोड़े से व्यक्तियों के अधिकार में हो जांयगे तो शेष लोग साधनहीन होकर अपना पेट भरने के लिये साधनवानों के मोहताज हो जायंगे। समाज में एक श्रेणी साधनों के मालिकों की और दूसरी साधनहीनों की वन जायगी। ऐसी अवस्था में समाज की शासन-व्यवस्था और सत्य-अहिंसा के नियमों को निश्चय करने का अधिकार पैदावार के साधनों की मालिक श्रेणी के ही हाथ में होगा और साधनहीन श्रेणी इन नियमों के अनुसार शासित होगी।

सम्पत्ति के दो रूप होते हैं। सम्पत्ति का एक रूप है, उपयोग में आने वाले पदार्थ और दूसरा रूप है, उपयोग में आने वाले पदार्थों को पैदा करने के साधन-औज़ार, कारखाने, भूमि, खानें आदि-आदि जिन्हें पूंजी के नाम से पुकारा जाता है। पूंजी ऐसी सम्पत्ति को कहते हैं जिस से भविष्य में पैदावार की जा सके। जो सम्पत्ति भोग और उपयोग में आती है, उसे पूंजी नहीं कहा जा सकता। पैदावार के साधनों पर अधिकार या मिल्कियत रखने का प्रयोजन यही है कि इन साधनों द्वारा साधनहीन श्रेणी से मेहनत कराकर उपयोग के पदार्थ वनवाये जायें। मालिक श्रेणी साधनहीनों के श्रम से उपयोगी पदार्थ वनवाकर समाज के हाथ वेचती है। पदार्थों की पैदावार कराते समय मालिक श्रेणी मेहनत करने वालों (मज़दूरों) को कम से कम मेहनताना (मज़दूरी) देती है और यह पदार्थ समाज को वेचते समय कच्चे माल के मूल्य के साथ अधिक से अधिक वनवाई (मेहनताना) लेने का यत्न करती है। मज़दूर से

अधिक पैदा कराया जाता है और उसे दिया कम जाता है। मजदूर को दी जाने वाली मजदूरी (मेहनताने) और समाज से ली जाने वाली बनवाई (मेहनताने) में जो अन्तर रहता है, वह मालिक श्रेणी का मुनाफा कहलाता है। यह मुनाफा मजदूरों को न दिया जानेवाला मेहनताना ही है। मजदूर सभी तरह के होते हैं, फावड़ा चलाने और कलम चलाने वाले भी।

मुनाफ़े के रूप में बचा कर रखे जाने वाले इस धन से, जो कि श्रम करने वाली श्रेणी के श्रम का वह भाग है जो उसे नहीं दिया गया, पैदावार के और अधिक साधन (पूंजी) बनाये जाते हैं और पूंजीपति श्रेणी के मुनाफ़ा कमाने के अवसर और शक्ति को बढ़ाया जाता है। पूंजीपति श्रेणी की व्यवस्था (सत्य-अहिंसा) की रक्षा के लिये यह आवश्यक है कि पूंजीहीन श्रेणी के लिये ऐसे नियम बना दिये जायें उन्हें ऐसे नियंत्रण में रखा जाय कि यह श्रेणी पूंजी या पैदावार के साधनों पर हाथ न डाल सकें। पूंजी के स्वामित्व की रक्षा के सिद्धान्त को लक्ष्य और केन्द्र बनाकर चलने वाले समाज में शासन व्यवस्था और सत्य-अहिंसा का मूल आधार यही सिद्धान्त है पूंजीवादी समाज की शासन व्यवस्था, सत्य-अहिंसा और आर्थिक व्यवस्था की रक्षा का प्रयोजन यह है कि पूंजीपति श्रेणी साधन हीन श्रेणी को आर्थिक रूप से अपने वश में रख कर उस की मेहनत से होने वाली पैदावार से मुनाफ़ा उठाती रहे। सत्य-अहिंसा के नाम पर इसी व्यवस्था की रक्षा करना गांधीवाद का उद्देश्य है। इसी सत्य अहिंसा की रक्षा को गांधी जी देश के स्वराज्य से अधिक महत्व देते थे।

हमारे समाज में और दूसरे उन सब देशों में भी, जहां पैदावार के साधन पैदावार के लिए मेहनत करने वाले सभी लोगों के साझे अधिकार में नहीं हैं, सत्य-अहिंसा अथवा शासन की व्यवस्था सम्पत्ति की मालिक श्रेणी के ही हाथ में है। इस व्यवस्था का प्रयोजन समाज को इस तरह चलाना है कि सम्पत्ति के मालिकों के सम्पत्ति पर अधिकार की और इस सम्पत्ति से लाभ या मुनाफ़ा उठाने के अधिकार की रक्षा होती रहे और साधनहीन श्रेणी उस के लिये मुनाफ़ा कमाने का साधन बनी रहे।

रामराज्य का आधार ईश्वर प्रेरणा का तथ्य

यह धारणा कि सत्य-अहिंसा (समाज में शासन की तथा आर्थिक व्यवस्था) शाश्वत है, वह सर्व-साधारण-समाज के निर्णय से ऊपर ईश्वर के अस्तित्व का शाश्वत अंग है, अथवा सत्य-अहिंसा का अस्तित्व समाज की भौतिक परिस्थितियों से स्वतंत्र आध्यात्मिक तथ्य है, अथवा वह ईश्वरीय-प्रेरणा का परिणाम है, केवल जन-साधारण का अज्ञान और मिथ्या विश्वास मात्र है। इस मिथ्या विश्वास को सम्पत्ति की मालिक श्रेणी ने अपने स्वार्थ की रक्षा के लिये, अपने शासन के अधिकार की शक्ति का लाभ उठा कर जन्म दिया है। जनता को यह उपदेश देना कि सत्य-अहिंसा अपरिवर्तन-शील ईश्वर की शाश्वत प्रेरणा है; ईश्वर-प्रेरणा को केवल कुछ ज्ञानी लोग ही पहचान सकते हैं, सर्व-साधारण जनता नहीं पहचान सकती; सत्य-अहिंसा के नियम शाश्वत हैं, कभी बदल नहीं सकते; मनुष्य-समाज के अनुभव और इतिहास के विरुद्ध बात करना है। ऐसे सिद्धान्तों का प्रचार जनता को भयभीत करने के लिये झूठ और भ्रम फैलाना है। इस के साथ ही कुछ लोगों का यह दावा करना कि जन-साधारण की पहुँच से दूर भगवान तक उन की पहुँच है, वे भगवान की आज्ञा और प्रेरणा प्राप्त कर सकते हैं, न केवल महात्माओं का दूसरे मनुष्यों से ऊंचा होने का मिथ्यअहंकार है बल्कि भयंकर प्रपंच और दम्भ है।

जो लोग विश्वास करते हैं कि इस सृष्टि और मनुष्य-समाज का निर्माण ईश्वर ने किया है और ईश्वरीय न्याय से संसार और समाज का विधान चलता है वे ईश्वर की अनेक और परस्पर-विरोधी व्याख्यायें करते हैं। ईश्वर के होने या न होने के बारे में बहस हमारे प्रसंग का विषय नहीं है। हम केवल इसी

विषय पर विचार कर रहे हैं कि सत्य-अहिंसा का निर्णय मनुष्य-समाज करता है या कोई दूसरी शक्ति। ईश्वर के सम्बन्ध में हमारा प्रयोजन यहां ईश्वर की गांधीवादी व्याख्या से ही है। 'गांधी-विचार-दोहन' पृ० ४ पर ईश्वर की परिभाषा इस प्रकार दी गई है:—"इस ईश्वर का स्वरूप मन और वाणी से परे है, उस के सम्बन्ध में हम इतना ही कह सकते हैं कि परमेश्वर अनन्त, अनादि, सदा एक रूप रहने वाला, विश्व का आत्मा-स्वरूप, आधार-रूप अथवा उस का कारण है। वह चेतन अथवा ज्ञान स्वरूप है। उस का ही एक सनातन अस्तित्व है, शेष सब नाशवान है। यदि एक छोटे शब्द का प्रयोग हम करना चाहें तो उसे हम सत्य कह सकते हैं।"

साधारण बुद्धि का व्यक्ति प्रश्न करेगा कि जो वस्तु (ईश्वर) या समस्या मनुष्यों के मन और वाणी से परे है, जिसे जान सकने का कोई साधन नहीं, उस के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करने का साधन गांधी जी या गांधीवादियों के पास क्या हो सकता है? ईश्वर के मन और वाणी की पहुंच से परे होने पर उस से प्रेरणा ग्रहण करने का उपाय क्या हो सकता है? सर्व-साधारण जनता को यह समझाना कि ईश्वर तुम्हारे मन और वाणी से परे है, और स्वयं ईश्वर की प्रेरणा प्राप्त कर लेने का दावा करना अपने आप को साधारण मनुष्यों से ऊंचा पैग़म्बर या ईश्वर का भाई बन्द बताना नहीं तो क्या है? इसे हम जनता के अज्ञान और मिथ्या-विश्वास से लाभ उठाने के निसंकोच प्रयत्न के सिवा और क्या कह सकते हैं?

सत्य और अहिंसा को एक मनघड़न्त, और सदा एक रूप रहने वाले भगवान की आज्ञा, प्रेरणा और निर्देश बताने का प्रयोजन सर्व-साधारण जनता को अपनी आध्यात्मिक तानाशाही की गुलामी में जकड़े रखने के सिवा और कुछ नहीं हो सकता। ईश्वर और सत्य-अहिंसा को शाश्वत तथा सदा एक रूप रहने वाला बताने का प्रयोजन यही है कि जन-साधारण मालिकों के स्वामित्वरूपी सत्य-अहिंसा के आदर्श और रूप को बदलने की बात न सोच पाये। गांधीवाद अपनी आध्यात्मिक सत्ता का दावा केवल धार्मिक और साम्प्रदायिक विश्वास के क्षेत्र में ही नहीं करता बल्कि राजनैतिक और आर्थिक क्षेत्र में भी करता है। १६१६, १६२२, १६३१ और १६४२ में जब देश की स्वतंत्रता के आन्दोलन गांधी जी के नेतृत्व से बाहर जाते दिखाई दिये, जनता ब्रिटिश राज की आधार सामन्तवादी और पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था को तोड़ डालने के लिये तैयार दिखाई दी,

गांधी जी ने पूंजीवादी सत्य-अहिंसा को खतरे में देख कर, ईश्वरीय-प्रेरणा के अधिकार से जनता के क्रान्तिकारी आन्दोलन को स्थगित कर पूंजीपति श्रेणी के स्वार्थ की रक्षा का काम किया। क्रान्ति के धक्के से ब्रिटिश राज के टूटने पर देश की पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था पर भी खतरा आता था। इस खतरे में ब्रिटिशराज और देश की पूंजीवादी व्यवस्था को बचाना ही गांधीवाद का प्रयोजन था। ईश्वरीय प्रेरणा का दम्भ करने वाला गांधीवाद आज भी भारत की पूंजीपति श्रेणी के हाथ में जनता के शोषण और अपने स्वार्थों की रक्षा का मुख्य शस्त्र है। आज भी कांग्रेसी सरकार अपने जनहित विरोधी पूंजीवादी राजनैतिक और आर्थिक कार्यक्रमों को गांधीवाद के नाम से जनता पर लाद रही है।

गांधीवाद ईश्वर को ही सत्य कहता है। गांधीवाद के अनुसार ईश्वर मन और वाणी से परे है इसलिये गांधीवादी का सत्य भी मन और वाणी से परे समाज की वास्तविक परिस्थितियों और निर्णय से स्वतंत्र, केवल गांधीवाद की कल्पना की ही वस्तु हो सकता है अथवा गांधीवाद इस बात का अधिकार और स्वतंत्रता लिए है कि वह जिस सिद्धान्त या कार्यक्रम को चाहे 'सत्य' बताकर जनता पर लाद दे जनता को इस बात का अधिकार नहीं कि वह सामाजिक परिस्थतियों के अनुकूल इस सत्य की छान-बीन कर सके, या इस 'सत्य' को अपने हित-अहित की कसौटी पर परख सके। क्योंकि सत्य जनता के मन और वाणी से परे है और गांधीवाद के नेता ही उसे पहचान सके हैं।

'गांधी-विचार-दोहन' के पृ० ५ पर सत्य की परिभाषा इस प्रकार की गयी है :—"विचार हमारी राग-द्वेष-हीन, श्रद्धा, भक्ति युक्त तथा निष्पक्ष बुद्धि को सदैव के लिये, अथवा जिन परिस्थितियों तक हमारी दृष्टि पहुँच सकती है उन में अधिक से अधिक समय तक के लिये उचित और न्याय प्रतीत होते हैं, वही हमारे लिये सद्विचार हैं।" इस परिभाषा के दो भाग हैं। परिभाषा का पिछला भाग परिस्थितियों के अनुसार अनुभव से सत्य की जाँच के सिद्धान्त को स्वीकार करता है परन्तु जांच का यह अधिकार देने से पूर्व गांधीवाद मनुष्य की बुद्धि और तर्क पर भक्तियुक्त राग-द्वेप-हीन और निष्पक्ष होने की शर्त लगा देता है। यह परिभाषा गांधीवाद की प्रपंचपूर्ण वाक्-शैली का एक अच्छा खासा उदाहरण है। श्रद्धा-भक्तियुक्त होना और निष्पक्ष भी होना, परस्पर विरोधी अवस्थायें हैं। श्रद्धा-भक्ति का अर्थ है, शंका और तर्क रहित पूर्ण विश्वास। निष्पक्ष होने का अर्थ है बिना किसी पूर्व धारणा, निश्चय

और विश्वास के विवेक करना, शंका और तर्क द्वारा वास्तविकता की जांच के लिये तैयार होना। जो व्यक्ति भगवान के प्रति श्रद्धा और भक्ति की शपथ खा चुका है वह भगवान की प्रेरणा की मोहर लगी हुई बात के सम्बन्ध में निष्पक्ष कैसे हो सकता है? जो बात भगवान की प्रेरणा मान ली गयी हो उस पर केवल शंका रहित विश्वास ही किया जायगा, उस के सम्बन्ध में तर्क से विवेक नहीं किया जा सकता। गांधीवाद केवल ऐसे ही व्यक्तियों को निष्पक्ष मानने के लिये तैयार है जो ईश्वरीय-प्रेरणा या गांधीवाद में श्रद्धा-भक्ति अर्थात् तर्क रहित अन्ध विश्वास रखते हों, ऐसे ही व्यक्तियों के हाथ में गांधीवाद अपने समर्थन की आशा से सत्य की खोज और निर्णय का अधिकार देने के लिये तैयार है।

वास्तव में सत्य-अहिंसा और ईश्वर-प्रेरणा का निश्चय समाज की व्यवस्था करती है। सत्य-अहिंसा और ईश्वर की प्रेरणा द्वारा समाज की व्यवस्था और नियम नहीं बनते। समाज का विकास पहले होता है और समाज अपनी आवश्यकताओं तथा परिस्थितियों के अनुसार अपनी व्यवस्था अर्थात् सत्य-अहिंसा का निश्चय स्वयं करता है। यदि समाज बन जाने या उस का विकास हो जाने से पहले ही अनादि, अनन्त ईश्वर की प्रेरणा द्वारा समाज के लिए सत्य-अहिंसा का एक आदर्श निश्चित हो जाता, जैसे कि मकान के बनने से पहले इंजीनियर लोग मकान के लिये नक़शा बना देते हैं, तो संसार के सभी समाजों में सत्य-अहिंसा के नियम और न्याय की व्यवस्था एक सी होती। सभी देशों में और सभी अवस्थाओं में समाज, नक्शे के आधार पर बने हुये मकान की तरह पूर्ण अवस्था में संगठित होता। परन्तु हम प्रत्यक्ष देखते और अनुभव करते हैं कि मनुष्य-समाज का संगठन किसी भूल न करने वाले नक्शे पर नहीं हुआ है। समाज के इतिहास को हम परिवर्तनों और संघर्षों की परम्परा के परिणाम में विकास करता हुआ पाते हैं। इतिहास में बदल चुके सत्य-अहिंसा के रूपों के अतिरिक्त आज भी हम संसार के भिन्न-भिन्न मनुष्य-समाजों में सत्य-अहिंसा और न्याय के आदर्श एक जैसे नहीं पाते और न सब समाजों में ईश्वर-प्रेरणा की कल्पना को एक ही रूप में पाते हैं।

सुदूर-इतिहास और दूर देशों की बात को छोड़ कर, आज भी भारत में मनुष्य-समाज के विकास की अनेक अवस्थायें दिखाई देती हैं। इसी देश के समाजों में सत्य-अहिंसा, न्याय और ईश्वर के अस्तित्व तथा प्रेरणा के सम्बन्ध में पृथक-पृथक धारणायें दिखाई देती हैं। तिब्बत की सीमा पर रहने वाले

अस्कोट के 'राजी' लोगों में, छोटा नागपुर की पहाड़ियों में रहने वाले आदिम-वासियों तथा देश के शिक्षित नागरिक समाज के सत्य-अहिंसा; न्याय और ईश्वर के सम्बन्ध की धारणाओं में समता और एकता नहीं दिखाई देती। जंगलों में रहने वाले अनेक आदिवासियों की धारणा के अनुसार वस्त्रों से शरीर ढंकना और भूमि को जोतकर अन्न उत्पन्न करना प्रकृति के नियमों और ईश्वर की व्यवस्था के विरुद्ध है। धरती की इच्छा के विरुद्ध उसे खोद कर उस में मनचाही चीज़ बो देना वे धरती माता के साथ बलात्कार का पाप समझते हैं। अपने विश्वास के अनुसार वे ऐसे अधार्मिक काम का विरोध करने के लिए अपने प्राण तक बलिदान कर देना धर्म समझते हैं। सत्य-अहिंसा न्याय और धर्म के इतने परस्पर-विरोधी रूप क्या एक ही ईश्वर की प्रेरणा समझे जा सकते हैं? यदि ईश्वर एक ही है तो यह मनुष्यों के ज्ञान का भेद है और मनुष्यों के लिये ईश्वरीय-प्रेरणा मनुष्य के ज्ञान द्वारा ही निश्चित होती है। ईश्वर के प्रति विश्वास ही ईश्वर का अस्तित्व है।

अपने देहातों और नगरों में ही हम शिक्षित और अशिक्षित लोगों में ईश्वर के अस्तित्व और उस की प्रेरणा के सम्बन्ध में कितना मतभेद देखते हैं? कुछ लोगों का विश्वास है कि ईश्वर पीपल के पेड़ पर जल या कब्रों पर चादर चढ़ाने से प्रसन्न हो जाता है, ईश्वर बकरे या भैंसे की बलि मांगता है और ऐसी बलि न मिलने पर मनुष्यों को दण्ड देता है। कुछ लोग पशु बलि को ईश्वर की आज्ञा के विरुद्ध समझते हैं। कुछ लोग गाय का मांस खाने से भगवान की अप्रसन्नता से नरक का दण्ड पाने की आशंका करते हैं और कुछ लोग सुअर का मांस खाने से दोज़ख की आग में जलने की। कुछ लोग ईश्वर को सशरीर और अपने विरोधियों को दण्ड देने वाला और कुछ लोग भगवान को गांधीवाद के अनुसार रूप, रस, रंग रहित और गुणातीत मानते हैं। अद्वैतवादियों के विश्वास में ईश्वर और भी अधिक सूक्ष्म वस्तु है और सम्पूर्ण प्रकृति केवल भ्रम ही है। जो लोग ईश्वर को पीपल के पेड़ और कब्रों की पूजा या बकरे की बलि से सन्तुष्ट करने का विश्वास करते हैं, उन्हें ईश्वर में विश्वास रखने वाले शिक्षित लोग और गांधीवादी अज्ञानी समझते हैं। गांधीवादी और ईश्वर की प्रेरणा में विश्वास रखने वाले दूसरे शिक्षित लोग भी कहेंगे कि अज्ञानी लोग ज्ञान की कमी के कारण ईश्वर के सम्बन्ध में गलत धारणा बना लेते हैं और ईश्वर की प्रेरणा को गलत समझ लेते हैं।

गांधीवाद के समर्थकों का यह कहना कि अशिक्षित और अज्ञानी लोग ईश्वर और ईश्वर की प्रेरणा के सम्बन्ध में गलत धारणा बना लेते हैं, ठीक है। परन्तु इस का अर्थ यह भी होता है कि ईश्वर और ईश्वर की प्रेरणा के सम्बन्ध में सब मनुष्यों की धारणा उन के अपने 'ज्ञान' और 'विश्वास' द्वारा ही निश्चित होती है। ईश्वरीय प्रेरणा में विश्वास रखने वाला मनुष्य जिस बात को अपने विश्वास से उचित और न्याय समझता है, उसी बात को ईश्वर की प्रेरणा मान लेता है और जिस बात को अनुचित और अन्याय समझता है, उसे ईश्वर की आज्ञा से पाप मान लेता है। अर्थात् ईश्वर के सम्बन्ध में मनुष्यों की धारणा उन के ज्ञान, अनुभवों और विश्वासों पर निर्भर रहती है। यही कारण है कि जिस समाज में मनुष्यों की शिक्षा और ज्ञान की जितनी उन्नति होती है उसी के अनुसार वह समाज ईश्वर का रूप और उस की प्रेरणा का निश्चय कर लेता है। सभ्यता की आदिम अवस्था में रहने वाले जंगली लोग, उदाहरणतः काला-पानी द्वीप के निवासी या अफ्रीका के घने जंगलों में रहने वाले लोग आज भी अपने शत्रु को युद्ध में हरा देने पर उसे मार कर खा जाना ईश्वर का दिया अधिकार समझते हैं। सभ्य-समाज के पूर्वजों ने भी जब खेती और पशु पालन द्वारा निर्वाह करना नहीं सीखा था, वे भी ऐसा ही करते थे। खेती और पशु-पालन द्वारा जीवन निर्वाह का ढंग सीख लेने पर युद्ध में हारे हुए लोगों को दास बना लिया जाने लगा। आज का सभ्य-संसार दास-प्रथा को अमानुषिक अन्याय समझता है। ईश्वर के न्याय में विश्वास रखने वाले शिक्षित लोग और गांधी-वादी भी आज मनुष्यों के खरीदने-बेचने और दास बनाने को ईश्वरीय-प्रेरणा से पाप ही समझेंगे परन्तु दास प्रथा भारत और संसार के सभी सभ्य देशों में धर्म और ईश्वरीय न्याय के विश्वास की दृष्टि से न्याय मानी जाती रही है। यूनान में ऋषि सुक्रात ने, भारतीय संस्कृति के नियामक मनु ने 'मनुस्मृति' में पितामह भीष्म ने महाभारत में; सभी लोगों ने अपने समयों में दास-प्रथा को ईश्वर का आदेश और धर्मानुकूल बताकर इस का अनुमोदन किया था। परन्तु आज गांधीवादी लोग दास-प्रथा को ईश्वर को प्रेरणा स्वीकार नहीं करेंगे, या तत्कालीन ईश्वर प्रेरणा में परिवर्तन की मांग करेंगे।

अछूतों की समस्या पर भी हम 'भगवान' मनु और 'महात्मा' गांधी द्वारा ईश्वर की प्रेरणा और न्याय के भिन्न-भिन्न रूप और उपदेश देखते हैं। यदि हम इन दोनों को उन के अपने-अपने दृष्टिकोण से, मनुष्य-समाज का हित

चिन्तक और ईमानदार मानना चाहते हैं तो एक ही रास्ता है; अर्थात् हम मानें कि दोनों ही महानुभावों ने अपनी-अपनी परिस्थितियों और अपने-अपने समाज के उद्देश्यों को दृष्टि में रख कर जिस व्यवस्था को सत्य-अहिंसा समझा उसे ईश्वर की प्रेरणा का नाम दिया। 'भगवान' मनु और 'महात्मा' गांधी की सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों के भेद ने उन के लिये ईश्वर-प्रेरणा के रूप और लक्ष्य को बदल दिया। ईश्वर प्रेरणा में आ जाने वाले इस परिवर्तन की जिम्मेवारी या उस का श्रेय गांधीवाद के अनुसार स्वयं एक रूप रस रहने वाले शाश्वत ईश्वर के सिर न बांध कर 'भगवान' मनु और 'महात्मा' गांधी की बदली हुई परिस्थितियों के सिर बांधना उचित होगा! इन बदली हुई परिस्थितियों ने ही गांधी जी के विचार मनु से भिन्न बना दिये। इसी प्रकार दूसरे प्रश्नों पर भी गांधी जी अपनी जिस नीति और कार्य-क्रम को ईश्वर की प्रेरणा का नाम देते थे, वह परिस्थितियों के सम्बन्ध में उन का अपना निर्णय था। गांधी जी ने अपने इन निर्णयों को ईश्वर-प्रेरणा का नाम इसलिये दिया कि तर्क से उस नीति और कार्य-क्रम का समर्थन करना कठिन था, गांधी जी का श्रेणिगत विश्वास और न्याय की धारणा ही, जो वास्तव में अपनी श्रेणी का स्वार्थ ही होता है, गांधी जी को उस ओर ले जा रहा था।

अपने कार्य-क्रम के प्रति जनता का अन्ध-विश्वास पाने के लिये ईश्वर का नाम केवल गांधी जी ने ही नहीं लिया। गांधी जी के मुकाबिले में मि० जिन्ना भी गांधी जी के ईश्वर-प्रेरणा से प्राप्त कार्य-क्रम का विरोध करने के लिये अल्लाह के हुक्म से हुकूमते-इलाही (ईश्वरीय-प्रेरणा के शासन) कायम करने की दुहाई दे रहे थे। परिस्थितियां और अंग्रेजों की शासक शक्ति मि० जिन्ना के पक्ष में होने के कारण मि० जिन्ना को अपने राजनैतिक कार्य-क्रम में गांधी जी की अपेक्षा सफलता भी अधिक ही मिली। परन्तु गांधीवादी कांग्रेसी नेता अपने पक्ष का समर्थन करने के लिये आज भी ईश्वर प्रेरणा की दुहाई दिये जा रहे हैं। उत्तर प्रांत के प्रधान मंत्री पं० गोविन्दवल्लभ पन्त निस्संकोच जनता को समझाते हैं कि समाजवादी उमीदवारों को वोट देना उचित नहीं क्योंकि वे ईश्वर में विश्वास नहीं रखते। इस का अभिप्राय यही समझा जा सकता है कि पं० पन्त का विश्वास ईश्वर में होने के कारण उन का शासन ईश्वरीय-प्रेरणा के अनुसार निर्दोष और जनता के लिये कल्याणकारी है।

सत्य-अहिंसा के सम्बन्ध में ईश्वर की प्रेरणा में परिवर्तन आ जाने के

उदाहरणों से इतिहास भरा हुआ है। दास-प्रथा और अछूतों की समस्या के सम्बन्ध में ईश्वर-प्रेरणा का उल्लेख हम कर चुके हैं। इसी प्रकार हमारे देश में सती-प्रथा का उल्लेख किया जा सकता है। इस से बड़े परिमाण में हम प्रजा पर ईश्वर के प्रतिनिधि राजा के निरंकुश अधिकार के स्थान पर प्रजातंत्र की भावना उत्पन्न हो जाना देखते हैं। ईश्वर की भूल-चूक न करने वाली प्रेरणा का दावा करने वाले गांधी जी को ही हम सन् १९१४-१९१८ के युद्ध में ईश्वर-प्रेरणा से राज-भक्त के रूप में ब्रिटिश सरकार की सहायता के लिये रंगरूट भरती करते देखते हैं। सन् १९४२ में ब्रिटिश साम्राज्यशाही को जापानी साम्राज्यशाही से हारते देख कर गांधी जी को युद्ध-विरोधी व्यक्तिगत सत्याग्रह के आन्दोलन का उपदेश देते देखते हैं। ब्रिटिश-सरकार के युद्ध की आयोजनाओं के कार्यक्रम का विरोध करने का अधिकार भी गांधी जी ने केवल 'ईश्वर' में विश्वास' रखने वाले लोगों को ही दिया था यद्यपि उन का ऐसा आदेश निरी व्यक्तिगत तानाशाही और कांग्रेस के विधान का उल्लंघन ही था। इस आन्दोलन में भाग लेने के लिये ईश्वर-विश्वास की शर्त लगाना कांग्रेस के नियम के विरुद्ध था। ईश्वर से विश्वास साम्प्रदायिक प्रश्न है। कांग्रेस के नियमों में स्पष्ट उल्लेख है कि कांग्रेस साम्प्रदायिकता में विश्वास नहीं करती इस शर्त का अभिप्राय यही था कि जनता गांधी जी के कार्यक्रम को परस्पर विरोधी और असंगत बातों पर तर्क न कर उन्हें भगवान की इच्छा मान स्वीकार कर ले। गांधी जी के विचार में ईश्वर विश्वास का अर्थ अंध विश्वास ही था।

इतिहास में जहां हम ईश्वर प्रेरणा में परिवर्तनों की परम्परा देखते हैं वहां इस तथ्य की भी उपेक्षा नहीं कर सकते कि समाज की व्यवस्था में परिवर्तन की आवश्यकता आने पर पुरानी चली आयी व्यवस्था नयी विचारधारा का विरोध करने के लिये अपने आप को ईश्वर-प्रेरणा का नाम देती आयी है। व्यवस्था के अधिकारी लोग या श्रेणी सदा ही अपने आप को ईश्वर का प्रतिनिधि और व्यवस्था में परिवर्तन चाहने वालों को ईश्वर विरोधी बताते आये हैं। इस का कारण है कि समाज द्वारा स्वीकृत व्यवस्था और सत्य-अहिंसा की धारणाओं के बदलने की गति और समाज की (आर्थिक) परिस्थितियों के बदलने की गति बराबर नहीं रहती। समाज की आर्थिक परिस्थितियां बदल जाती हैं और पुरानी चली आयी व्यवस्था और सत्य अहिंसा की धारणाओं में परिवर्तन की मांग करने लगती हैं। इसी कारण समाज में संघर्ष

होता है जो पुरानी व्यवस्था को वदल कर सत्य-अहिंसा की नयी धारणाओं को मान्यता देता है।

विचारों के जन्म से पूर्व उन्हें जन्म दे सकने वाली परिस्थितियों का होना आवश्यक होता है। उदाहरणतः इस देश के पुराने वर्ण रहित समाज में जव श्रम के विभाजन को आवश्यक करने वाली परिस्थिति पैदा हुई तो वर्ण-व्यवस्था पैदा हो गई। जव राजा का एक छत्र राज आवश्यक था, राजभक्ति ईश्वरीय आज्ञा मानी गई। जव दास प्रथा समाज के लिये हानिकारक हो गई, मनुष्यों की समानता की न्याय की धारणा पैदा हो गई। और जव राजा का एक छत्र राज समाज के लिये उपयोगी नहीं रहा. प्रजातंत्र के प्राकृतिक, ईश्वरदत्त अधिकार की न्याय की धारणा पैदा हो गई। नयी परिस्थितियां पैदा हो जाने पर भी पुराने विश्वास और धाराणायें घिसटती रहती हैं; उदाहरणतः आज भी अछूतों को अछूत वनाये रखने की धारणा का समर्थन करने वाले, स्त्रियों की समानता के अधिकार का विरोध करने वाले और समाज का कल्याण व्यक्तिगत तानाशाही द्वारा ही सम्भव मानने वाले लोग मिल जायेंगे।

मार्क्सवादी भौतिकवाद का कहना है कि समाज की व्यवस्था और सत्य-अहिंसा की नैतिक धारणा समाज की आर्थिक परिस्थितियों के अनुकूल होती हैं। इसलिये समाज की आर्थिक परिस्थितियों में परिवर्तन हो जाने पर समाज के कल्याण के लिये उस की सत्य-अहिंसा की धारणा और व्यवस्था में भी परिवर्तन हो जाना चाहिये। इस के विपरीत आध्यात्मवाद, और गांधीवाद की धारणा है कि समाज की व्यवस्था को पुराने समय से चली आयी धारणाओं और आदर्शों के अनुसार वांधे रखना उचित है। यदि समाज इस सिद्धान्त पर चलेगा तो उसे अपनी परिस्थितियों में परिवर्तनों को रोकना आवश्यक हो जायगा। परन्तु समाज परिस्थितियों के परिवर्तन को कभी रोक नहीं सका वल्कि समाज स्वयं ही अपनी परिस्थितियों को वदल देता है। समाज में अन्तर्विरोध या संघर्ष इसलिये पैदा हो जाता है कि कायम व्यवस्था पर अधिकार जमाये श्रेणी अपना स्वार्थ पूरा करने वाले अधिकारों को वनाये रखने के लिये सत्य-अहिंसा की व्यवस्था को परिस्थितियों के अनुकूल वदलने से रोकती है। यही काम आज हमारे समाज में गांधीवाद कर रहा है। वह समाज में पूंजीपति श्रेणी द्वारा साधनहीन श्रेणी के शोपण की व्यवस्था को सत्य-अहिंसा, ईश्वर की प्रेरणा और रामराज्य का नाम दे कर सुरिक्षत रखना चाहता है।

आध्यात्मवादियों या गांधीवादियों का विश्वास है कि मनुष्य-समाज की व्यवस्था मनुष्य के विचारों और आदर्शों के अनुसार होती है और हमारे पुराने चले आये आदर्शों और सत्य-अहिंसा की धारणा के अनुसार ही समाज में रामराज्य की व्यवस्था होनी चाहिये। अपने आदर्शों के पुरानेपन के कारण उन की श्रेष्ठता का दावा करने वाले यह भूल जाते हैं कि रामराज्य से पूर्व भारतीय इतिहास के त्रेता-कृत युग में ग्राम, बस्तियां या कुल कृषि की भूमि के साझे मालिक होते थे। उस युग में कुल पैदावार का बँटवारा होता ही नहीं था इस कारण कुल या समाज में अमीर-गरीब, या सेवकों और स्वामियों की श्रेणियां बन जाने का अवसर नहीं था। उस समय समाज में वर्णों ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र का भी विभाजन नहीं हुआ था। समाज में कृषि और पैदावार के साधनों का विकास हो जाने पर, व्यापार और विनिमय के लिये पदार्थों की पैदावार बढ़ाने की आवश्यकता होने पर समाज को आर्थिक रूप से बांटने की और पैदावार के साधनों को व्यक्तिगत सम्पत्ति स्वीकार करने की आवश्यकता अनुभव हुई। इसी परिस्थिति ने वर्णाश्रम धर्म और पैदावार के साधनों पर व्यक्ति के निरंकुश अधिकार की सत्य-अहिंसा या शासन की व्यवस्था और राजा के शासन, रामराज्य की व्यवस्था को जन्म दिया। पुरानेपन के आधार पर तो हमें वर्ग और श्रेणी रहित समाज को ही, जिस में शासन का वर्तमान रूप था ही नहीं, आदर्श मानना होगा, रामराज्य के शासन को नहीं।

पैदावार के साधनों पर कुछ लोगों का व्यक्तिगत और वंशगत अधिकार और साधनहीन लोगों से करायी गयी पैदावार पर साधनों के मालिकों का अधिकार ही समाज को श्रेणियों में बांट देता है, और शासक तथा शासितों का भेद पैदा कर देता है। समाज को श्रेणियों में बांट कर आर्थिक शोषण और शासन की व्यवस्था को निरंकुश रूप से कायम करना ही रामराज्य का लक्ष है। वर्ग-रहित समाज में आर्थिक विकास हो जाने पर यदि रामराज्य के आदर्श का जन्म हो सकता था और इस के बाद एक छत्र राजा के अबाध शासन के स्थान पर प्रजातंत्र की भावना का जन्म हो सकता था तो क्रमनः आर्थिक विकास से पैदा हो गयी परिस्थितियों में एक और नयी श्रेणी रहित व्यवस्था का भी जन्म हो सकता है। समाज में औद्योगिक और यंत्रों के विकास ने रामराज्य के काल से भिन्न नयी परिस्थितियां पैदा कर दी हैं, इस बात से कोई आंख रखने वाला इनकार नहीं कर सकता। यह नयी परिस्थितियां अपने

अनुकूल नयी व्यवस्था की मांग कर रही हैं। इस नयी व्यवस्था की स्थापना का उपाय और मार्ग श्रेणी-संघर्ष है। समाज में आर्थिक परिवर्तन हो जाने के कारण श्रेणी संघर्ष अनिवार्य रूप से संसार भर में फैल चुका है। संसार के अनेक देशों में श्रेणी संघर्ष द्वारा नयी श्रेणी रहित व्यवस्था सफलता पूर्वक कायम भी हो चुकी है। हमारा देश संसार की प्रगति से अलग नहीं रह सकता। इसलिये नयी व्यवस्था की स्थापना का कार्य-क्रम अर्थात् श्रेणी संघर्ष यहां भी अनिवार्य है। श्रेणी संघर्ष का अर्थ रक्तपात ही नहीं है। शोषित वर्ग पर्याप्त रूप से सचेत हो जायें तो वह रक्तपात का अवसर बचा कर भी व्यवस्था अपने हाथ में ले सकता है। समाज की शक्ति संघर्ष में नष्ट होने से बचाने का एक-मात्र उपाय यही है कि हम समाज की आधुनिक आर्थिक परिस्थितियों के अनुकूल नयी श्रेणी रहित आर्थिक व्यवस्था समाज में जल्दी से जल्दी चालू होने दें।

समाज से शोषण के अवसर और सम्भावना को दूर करने और शोषण से मुक्त श्रेणी रहित व्यवस्था समाज में कायम करने के यत्न और आन्दोलन का विरोध वही लोग कर सकते हैं जो शोषण के अवसर से लाभ उठा रहे हैं। शोषण के अवसर और अधिकार का लाभ साधनों की मालिक भूमि की मालिक और पूंजीपति श्रेणी ही उठा रही है और केवल यही श्रेणी या इस श्रेणी के वकील मौजूदा व्यवस्था में सत्य-अहिंसा और न्याय की सम्भावना देख सकते हैं और इसे ईश्वर-प्रेरणा मान सकते हैं।

गांधीवाद पूंजीवादी सत्य-अहिंसा की धारणा के अतिरिक्त और कुछ नहीं और इसीलिये वह पूंजीवादी नैतिक धारणा को बदल सकने वाले श्रेणी-संघर्ष को अन्याय और हिंसा कहता है। गांधी जी ने स्वयं कहा है—"मैंने किसी नये तत्व का आविष्कार नहीं किया है। सत्य-अहिंसा अनादि काल से चले आये हैं।" वास्तव में ही गांधीवाद ने किसी नये तत्व का आविष्कार न कर केवल सम्पत्ति की मालिक श्रेणी के अधिकारों का समर्थन ही किया है। इस श्रेणी के शासन का ही नाम रामराज्य है। रामराज्य का अर्थ है कि साधनों की मालिक शासक श्रेणी स्वयं प्रजा की रक्षा कर समाज का शासन इस प्रकार करे कि उन के शासन के विरोध का अवसर न आ सके। रामराज्य ऐतिहासिक रूप से जिस समय और जैसी परिस्थितियों का आदर्श रहा है उस समय साधनहीन श्रेणी के अधिकार का प्रश्न न कभी उठा था और न उठने की सम्भावना और कारण ही था। गांधीवाद के अनुसार प्रजा के लिये राम-राज्य

का अर्थ शासक शक्ति के न्याय और दया में विश्वास रख कर शासन को अपनी इच्छा से सिर झुका कर स्वीकार करते रहना है।

गांधीवाद पूंजीपति श्रेणी के स्वार्थ की रक्षा करने वाली सत्य-अहिंसा की पुरानी धारणा पर शाश्वत होने और उस के ईश्वर की आज्ञा होने की मोहर लगा कर नयी व्यवस्था, श्रेणी-रहित आर्थिक व्यवस्था की स्थापना का विरोध करता है। गांधीवाद का कहना है वह समाज में श्रेणी संघर्ष नहीं चाहता, अहिंसा और श्रेणी मैत्री चाहता है। श्रेणी संघर्ष तभी अनुभव होता है जब मेहनत करने वाली श्रेणी पूंजीपति श्रेणी के शोषण के अधिकार और बन्धनों को तोड़ कर स्वतंत्र होने का यत्न करती है। पूंजीपति श्रेणी, पैदावार के साधनों पर अपनी मिल्कीयत होने के कारण ही मेहनत करने वाली श्रेणी का शोषण कर सकती है। मेहनत करने वाली श्रेणी के पास शोषण के बन्धन से मुक्त होने का एक ही उपाय है: – पैदावार के साधनों पर से पूंजीपति श्रेणी की एक मात्र मिल्कीयत हटा कर उन्हें सम्पूर्ण समाज की साझी मिल्कीयत बना देना। इस का अर्थ यह नहीं है कि पूंजीपति श्रेणी को साधनहीन बना दिया जाय या उन की हिंसा की जाय। इस का अर्थ है कि सम्पूर्ण समाज समान और सामूहिक रूप से पैदावर के साधनों का स्वामी हो जाय, किसी की भी हिंसा का अवसर न रहे। समाज की आर्थिक व्यवस्था में यह परिवर्तन हो जाने पर समाज में साधनवान और साधनहीन का भेद या शोषण के अवसर की परिस्थितियां न रहेंगी परन्तु गांधीवाद श्रेणी-संघर्ष को हिंसा बताकर उस का विरोध करता है।

समाज में शोषण है, विषमता है इस बात से गांधीवाद इनकार नहीं कर सकता परन्तु जब शोषित लोग इस शोषण और विषमता से मुक्ति का यत्न करते हैं तो गांधीवाद उन के प्रयत्न को हिंसा का नाम देकर उस का विरोध करता है। गांधीवाद के अनुसार पूंजीपति श्रेणी के हाथ में मेहनत करने वाली श्रेणी के शोषण का अवसर और अधिकार रहना अहिंसा है। और समाज के पैदावार के साधनों पर सम्पूर्ण समाज का समान अधिकार होकर शोषण का अवसर न रहने देने का यत्न हिंसा है। गांधीवाद का दावा है कि श्रेणी-संघर्ष द्वारा समाज की आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन किये बिना, पैदावार के साधनों पर से पूंजीपति श्रेणी की मिल्कीयत हटाये बिना ही हृदय-परिवर्तन, श्रेणी-मैत्री और रामराज्य द्वारा समाज से शोषण और विषमता मिट सकती है।

व्यावहारिक और क्रियात्मक रूप में हृदय-परिवर्तन, श्रेणी-मैत्री और रामराज्य का क्या अर्थ होता है ? समाज से हिंसा, विषमता और शोषण दूर करने के लिये श्रेणी-मैत्री और हृदय-परिवर्तन के लिये समाज की साधनवान और साधनहीन श्रणियों को गांधीवाद का क्या उपदेश है ? साधनवान श्रेणी को गांधीवाद का उपदेश है कि वे लोभ और स्वार्थ का त्याग कर के साधनहीन श्रेणी पर दया करें। अपनी पूंजी या मिल्कियत का इस प्रकार उपयोग करें कि उस से गरीब, साधनहीन श्रेणी का भला हो ? पूंजीपतियों को चाहिये अपने आप को सामाजिक सम्पत्ति का संरक्षक मात्र ही समझें। अर्थात् पूंजीपति श्रेणी साधनहीन श्रेणी पर दया करे, उन की पालना करे, अपने आप को साधनों की संरक्षक मात्र समझे परन्तु साधनों पर स्वामित्व या शासन का अधिकार पूंजीपति श्रेणी का ही रहे।

गांधी जी के त्याग के उपदेश में पूंजीपति श्रेणी को यह आदेश नहीं है कि यह श्रेणी समाज के कल्याण के लिये पैदावार के साधनों को अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के नियंत्रण से निकाल कर सामाजिक सम्पत्ति बना दे। साधनहीन श्रेणी के प्रति दया और उन्हें सन्तुष्ट रखने का उपदेश इसलिये है कि साधनहीन श्रेणी पूंजीपति श्रेणी की मिल्कीयत की व्यवस्था में अपना जीवन असम्भव हो रहा देख कर इस व्यवस्था को पलटने का यत्न न करे।

पूंजीपति श्रेणी को शोषण के अधिकारों के त्याग का उपदेश नहीं, केवल अपने ठाट-बाट और भोग में कमी करने का उपदेश है। इस उपदेश का कारण है, साधनहीन श्रेणी के असंतोष के कारण पूंजीपति श्रेणी के अधिकारों के लिये बढ़ता हुआ खतरा ! प्रयोजन है, समाज की व्यवस्था पर पूंजीपति श्रेणी के अधिकार की रक्षा। साधनहीन श्रेणी के ईश्वर में और परम्परागत धारणाओं में चले आये विश्वास का लाभ उठाकर उन के लिये गांधीवाद का उपदेश है :—
"उन की सच्ची भलाई धर्म का पालन करने में है। उन्हें ईश्वर का ज्ञान होना चाहिये, इस के लिये सत्य-अहिंसा का पालन आवश्यक है। इसी का दूसरा नाम प्रेम है। जहाँ प्रेम है, वहाँ जीवन है। जहाँ घृणा है वहां नाश है।"

साधनहीन श्रेणी की सच्ची भलाई किस धर्म के पालन में है ? गांधीवाद के अनुसार वह धर्म परम्परा से चला आया स्वामी की सेवा और भक्ति का धर्म है ! सत्य-अहिंसा के पालन का अर्थ है, पूंजीवादी समाज में कायम आर्थिक व्यवस्था के अनुसार अपने शोषण को सहते जाना। प्रेम का अर्थ है, शोषण

को सहते जाना । प्रेम का अर्थ है, शोषण का विरोध न कर पूंजीपति श्रेणी के सुख और अधिकार-भोग का साधन बने रह कर सन्तुष्ट रहना । इसी प्रेम को गांधीवाद साधनहीन श्रेणी के लिये जीवन का मार्ग बताता है । गांधीवाद के अनुसार घृणा का अर्थ है, साधनहीनों का पूंजीवादी श्रेणी के शोषण की व्यवस्था को तोड़ कर आत्मनिर्णय का अधिकार पाने का यत्न करना । गांधीवाद साधनहीन श्रेणी को पूंजीवादी शोषण की व्यवस्था से घृणा न करने और परिणाम में अपनी मुक्ति का यत्न न करने का उपदेश देता है । इस उपदेश का प्रयोजन है कि साधनहीन श्रेणी समाज में मौजूद पूंजीवादी व्यवस्था पर चोट न करे । जिस ओर से देखिये गांधीवाद का लक्ष्य पूंजीवादी व्यवस्था की रक्षा ही है ।

व्यवहारिक क्षेत्र में हृदय-परिवर्तन का क्या अर्थ हो सकता है ? मनुष्य के हृदय की भावना या विचार उस के जीवन के ढंग से भिन्न नहीं हो सकते । पूंजीपति श्रेणी पैदावार के साधनों का उपयोग किस प्रकार करेगी, यह इस बात पर निर्भर करता है कि पैदावार के साधनों पर स्वामित्व या अधिकार किया क्यों जाता है ? पूंजीपति पैदावार के साधनों पर इस प्रयोजन से अधिकार करते हैं कि जीवन के लिये आवश्यक, उपयोगी पदार्थ उन्हें अधिक से अधिक परिमाण में मिलते रहें । पूंजीपति पैदावार के उतने ही साधनों पर अधिकार नहीं करता जितने से कि वह स्वयं मेहनत कर निर्वाह के लिये आवश्यक पदार्थ उत्पन्न कर सके । पूंजीपति पैदावार के अधिक से अधिक साधन अपने वश में कर के दूसरे लोगों को साधनहीन बनाना आवश्यक समझता है । इस का प्रयोजन होता है कि वह स्वयं पैदावार के श्रम से बचे और साधनहीनों को निर्वाह योग्य पैदावार करने के लिये अवसर देने के मूल्य में उन के श्रम के फल का अधिक से अधिक भाग हथिया सके ।

पैदावार के साधनों पर अधिकार केवल दूसरे के श्रम से अपनी आवश्यकतायें पूर्ण करने का ही साधन नहीं बल्कि समाज में शासन के अधिकार का भी साधन है। इसलिये पूंजीपति लोग पैदावार के साधनों पर अपना अधिकार बढ़ाते ही चले जाते हैं और दूसरे लोगों को साधनहीन बनाकर अपने वश में रखना भी आवश्यक समझते हैं । समाज के पैदावार के साधनों पर अधिकार कर दूसरों को साधन-हीन बनाने का प्रयोजन ही जब साधनहीनों का शोषण और दमन है । पूंजी-पति श्रेणी पूंजी जमा करने के इस प्रयोजन की उपेक्षा कैसे कर सकती है ।

उस में हृदय परिवर्तन का अवसर कहां ? पूंजीपति की परिस्थितियों में परिवर्तन होने से ही उस का हृदय परिवर्तन हो सकता है। इस क्रम का परिणाम हम पूंजीवादी समाज में स्पष्ट देख रहे हैं। अमेरिका और इंगलैण्ड के विस्तृत साम्राज्यों का शासन उन देशों के सब से समृद्ध दो-तीन सौ परिवारों के ही हाथ में है। भारत में भी 'राष्ट्रीय' शासन कायम हुये अभी तीन ही वर्ष हुए हैं परन्तु देश की नीति और शासन की वागडोर कुछ-एक बड़े-बड़े पूंजीपतियों ने सम्भाल ली है। प्रकट में देश के शासन और मंत्रीपद की गद्दी वे वेशक न सम्भालें; इस बात की उन्हें जरूरत भी नहीं क्योंकि शासन के पदों पर बैठे लोग इन पूंजीपतियों के 'प्यादे' ही हैं।

पूंजीवाद की भावना, समाज के साधनों पर व्यक्तिगत अधिकार जमा कर समाज की व्यवस्था पर कुछ व्यक्तियों का नियंत्रण रखने की नीति बहु जन के हित प्रजातंत्र और जनतंत्र की भावना की मूलतः विरोधी है। कुछ आदमियों का समाज के सम्पूर्ण साधनों को समेट लेना और शेष का साधनहीन होकर साधनवानों की दया और न्याय की भावना पर निर्भर करने का सिद्धान्त शक्ति और अवसर की असमानता और दमन की नींव पर बना हुआ है। असमान नींव पर बनाई गई सामाजिक व्यवस्था में जनतंत्र की समानता कभी सम्भव नहीं हो सकती। ऐसी अवस्था केवल साधनवानों के निरंकुश शक्ति प्रयोग और साधनहीनों के पूर्ण दमन पर ही कायम रह सकेगी। साधनहीनों के निरंकुश दमन और साधनवानों की तानाशाही को सत्य-अहिंसा का नाम देने के लिये ही गांधीवाद रामराज्य को मान्यता देता है। जिस का आदर्श स्वामी वर्ग के सम्मुख प्रजा का पूर्ण दासत्व है !

गांधीवाद का यह उपदेश कि पूंजीपति श्रेणी पैदावार के साधनों पर अधिकार तो जरूर रखे और इस अधिकार से अपना स्वार्थ पूरा न कर मेहनत करने वाली श्रेणी का हित करे, किसी प्रकार व्यवहारिक नहीं हो सकता। गांधीवाद को समाज के कल्याण का मार्ग बताने वाले, और गांधीवाद के प्रचार के लिये लाखों रुपया दान करने वाले किसी भी पूंजीपति ने अपने औद्योगिक व्यवसाय के विस्तार को कम करने की बात नहीं सोची, विपरीत इस के वे लोग समाज पर अपना आर्थिक नियंत्रण बढ़ाने और उसे मजबूत बनाने के लिये अपने उद्योगों को बढ़ाते ही जा रहे हैं।

किसी भी शस्त्र या अधिकार को रखने का प्रयोजन उस का उपयोग ही

होता है। यदि पूंजीपति श्रेणी पैदावार के साधनों पर स्वामित्व और समाज पर शासन के अधिकार से साधनहीन श्रेणी के शोषण द्वारा अपना स्वार्थ पूरा करने का उद्देश्य छोड़ दे तो साधनों के स्वामित्व की जिम्मेवारी उन के लिये केवल संकट मात्र ही रह जायगी। गांधी जी ने पूंजीपति श्रेणी को चतुरता का यह उपदेश दिया है कि इस श्रेणी को अपने भोग-विलास और ठाट-बाट की अपेक्षा अपने शासन के अधिकार को ही अधिक महत्व देना चाहिये। इसी लिये वे इस श्रेणी को साधनहीन श्रेणी के प्रति अपनी दयालुता पर विश्वास दिलाने का उपदेश देते हैं। उन का व्यक्तिगत त्याग भी अपने विचारों के प्रति जनता में विश्वास उत्पन्न करने का सफल साधन था और उन के सत्य-अहिंसा सम्बन्धी विचार अपनी श्रेणी के प्रभुत्व की रक्षा के साधन ही थे।

समाज की आर्थिक व्यवस्था और परिस्थितियों में परिवर्तन किये बिना यदि पूंजीपति श्रेणी के हृदय परिवर्तन से समाज के शोषण, विषमता और हिंसा का उपाय हो सके तो इस का अर्थ होगा कि पूंजीपति श्रेणी द्वारा साधन-हीनों का शोषण और दमन समाज की आर्थिक परिस्थितियों के कारण नहीं है। पूंजीपति श्रेणी के विचार, उन के हृदय की भावना और उन के व्यवहार समाज की आर्थिक परिस्थितियों से स्वतंत्र हैं। साधनहीनों का शोषण समाज की पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था का परिणाम नहीं, पूंजीपतियों के स्वभाव की दुष्टता के कारण है, जो समाज की आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन किये बिना गांधीवाद के उपदेशों से दूर की जा सकती है। पूंजीपति श्रेणी में यदि अनेक 'रावण' हैं तो कई 'राम' भी पैदा हो सकते हैं। यह 'राम' ही अपनी ताना-शाही से प्रजा या साधनहीन श्रेणी का उद्धार करेंगे। साधनहीन श्रेणी का शासन पर अधिकार करने का प्रयत्न 'राम' के प्रति विद्रोह है। यह गांधीवाद का आध्यात्मिक जाल है जो समाज की भौतिक आर्थिक परिस्थितियों को और समाज के श्रेणी रूप को छिपाने का प्रयत्न है। इस आध्यात्मिक प्रपंच का व्यवहारिक अर्थ होता है, पूंजीपति श्रेणी की न्याय बुद्धि और दयालुता पर निर्भर रहने की प्रेरणा, साधनहीन जनता को यह विश्वास दिलाना कि पूंजीवादी व्यवस्था में, गांधी, नेहरू और पटेल जैसे 'राम' हैं, उन के शासन में ही तुम्हारा हित है। साधनहीन श्रेणी का आत्मनिर्णय की बात सोचना भगवान की प्रेरणा और सत्य-अहिंसा के विरुद्ध है।

समाज के शोषण को पूंजीपति श्रेणी के शासन का अनिवार्य परिणाम

न मान कर पूंजीवादी व्यवस्था के दयालु 'राम' पर भरोसा करने की कल्पना का परिणाम क्या होगा ? आप किसी भी न्यायप्रिय और दयालु पूंजीपति व्यक्ति का उदाहरण ले लीजिये। यह दयालु पूंजीपति अपने मजदूरों की अवस्था सुधारने के लिये उन्हें अधिक मजदूरी देना चाहता है। दूसरे पूंजीपतियों की अपेक्षा अधिक मजदूरी देने के कारण या तो वह अपना सौदा महंगा वेचेगा या कम मुनाफे से सन्तोप करेगा। यदि ऐसा पूंजीपति सौदा महंगा वेचता है तो वह दूसरे पूंजीपतियों के मुकाविले में ठहर नहीं सकता। यदि मुनाफ़ा कम लेता है तो पूंजीपति के रूप में उस की शक्ति क्षीण होती जाती है और दूसरे पूंजीपति उसे अपनी श्रेणी का 'विभीषण' समझ कर उसे बाज़ार से उखाड़ देते हैं। इंगलैंड का प्रसिद्ध रावर्ट ओवन ऐसा परीक्षण कर के अपनी असफलता का उदाहरण छोड़ गया है।

पूंजीवादी व्यवस्था में वही पूंजीपति सफल हो सकता है जो मुनाफ़ा कमाने के सिद्धान्त और समाज के श्रम को पूंजी का रूप देकर अपनी शक्ति वढ़ाने की राह पर चले। पूंजीपति का वल उस के शोषण की शक्ति में है, उस के हृदय की दयालुता में नहीं। पूंजीवादी शासकों की योग्यता पूंजीवादी व्यवस्था को दृढ़ता पूर्वक लागू करने में है। उन की दयालुता शोषण के नियम को वदल नहीं देगी अलवत्ता शोपण को कुछ समय के लिये सह्य वनाने की वात सोच सकती है; जिस का उद्देश्य साधनहीन श्रेणी का हित नहीं वल्कि पूंजीवादी व्यवस्था को खतरे से वचाना होगा। भौतिकवादी-मार्क्सवाद व्यक्ति के विचारों और व्यवहार को परिस्थितियों से स्वतंत्र नहीं मानता और न परिस्थितियों को वदले विना व्यक्तिगत हृदय परिवर्तन में और न व्यक्तिगत हिंसा में भरोसा रखता है।

समाज में पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था का शासन रहते यदि कोई सुधारवादी सरकार पूंजीपति श्रेणी के निर्णय के विरुद्ध चलती है तो पूंजीपति श्रेणी आर्थिक व्यवस्था की शासक होने के कारण ऐसी सरकार को अर्थसंकट में डाल कर उस का शासन असम्भव कर देती है। ऐसी अवस्था में यदि शोषण के कारण को मिटाने के लिये सरकार का दृढ़ निश्चय है तो उसे सर्व-साधारण जनता के सहयोग से समाज के पैदावार के साधनों पर से पूंजीपति श्रेणी का नियंत्रण घटाना या दूर कर देना पड़ेगा। जो सरकार समाज के पूंजीपति वर्ग के निर्णय पर निर्भर करेगी वह समाज को शोषण से कभी मुक्त नहीं कर सकेगी। ऐसी सरकार के प्रजा-हित और राष्ट्रीयकरण के वायदे केवल जनता को धोखा देने

के प्रयोजन से होंगे। इस का उदाहरण गांधीवादी कांग्रेस के राष्ट्रीयकरण के प्रस्ताव हैं। पूंजीपति श्रेणी के नियंत्रण में कांग्रेसी सरकार बनते ही कांग्रेस के राष्ट्रीयकरण के प्रस्ताव स्थगित कर दिये गये और फिर भुला दिये गये। कांग्रेस ने सन् १६३१ के करांची अधिवेशन में उद्योगों के राष्ट्रीयकरण का प्रस्ताव पास किया था परन्तु उद्योगों का राष्ट्रीयकरण स्थगित करने का प्रस्ताव कांग्रेस ने कभी पास नहीं किया। कांग्रेसी सरकार उद्योगों का राष्ट्रीयकरण स्थगित कर चुकी है। यह कांग्रेसी सरकार का कांग्रेस को पूंजीपतियों की तानाशाही के आधीन कर देना नहीं तो क्या है? गांधीवादियों ने सरकार के इस कार्य का कभी विरोध नहीं किया। जिन गांधीवादियों ने कांग्रेस की इस नीति का विरोध किया उन्हें कांग्रेस छोड़ कर अपने नये संगठन उदाहरणतः प्रजासोशलिस्ट दल इत्यादि अलग बनाने पड़े। इस से स्पष्ट है कि गांधीवाद का उद्देश्य इस देश में पूंजीपति श्रेणी के शासन की स्थापना ही था जो जनता के प्रति विश्वासघात कर के समाज की आर्थिक व्यवस्था का नियंत्रण पूंजीपति श्रेणी को सौंप कर पूरा कर दिया गया है।

ब्रिटिश साम्राज्यशाही से देश का शासन अपने हाथ में पाने के बाद कांग्रेस की रामराजी सरकार ने पांच वर्ष तक इस देश की पूंजीपति श्रेणी के कौशल अथवा हृदय परिवर्तन द्वारा जनता की भूख और बेकारी का उपाय करने का अवसर दिया। एटली के कथनानुसार भारत को कम्युनिज्म और समाजवाद के प्रभाव से बचाने के लिये दूसरे पूंजीवादी राष्ट्रों ने भी शोषण की आर्थिक व्यवस्था में समाजवादी प्रभाव न आने देने के लिये उधार के रूप में सहायता दी। परन्तु जनता के शोषण का प्रयोजन लिये यह प्रयत्न जनता की अवस्था सुधारने में सहायक नहीं हो सकते थे। अन्ततः रामराजी सरकार को उत्पादन के साधनों का राष्ट्रीय करण करके जनता की बेकारी दूर करने और जनता की आवश्यकतायें पूर्ण करने के उपाय को अपनी पंचवर्षीय योजनाओं में स्थान देना पड़ा। परन्तु राष्ट्रीय नियंत्रण में उत्पादन करने का काम बहुत बेमने ढंग से किया जा रहा है। राष्ट्रीय नियंत्रण में आरम्भ किये गये उद्योग धंधों को सफल बनाने का काम ऐसे लोगों के हाथ में दिया जा रहा है जो पूंजीपति व्यवस्था में विश्वास रखते हैं। उस के परिणाम भी सामने आ रहे हैं कि राष्ट्रीय नियंत्रण में किये गये पैदावार को आर्थिक दृष्टि से असफल बनाया जा रहा है।

गांधी जी साधनों की मालिक श्रेणी के अधिकारों की रक्षा ही सत्य-अहिंसा समझते थे, यह उ० प्र० की जमींदारी एसोसियेसन के प्रतिनिधि मंडल को गांधी जी द्वारा दिये आश्वासन से स्पष्ट है। जनता की मांग के दबाव के कारण जब प्रथम कांग्रेसी-शासन के समय (१९३७–१९४०) जमींदारी उन्मूलन का प्रश्न उठ रहा था, गांधी जी ने इस प्रतिनिधि मण्डल को आश्वासन दिया था:—"यदि सम्पत्ति की मालिक श्रेणी से उन की सम्पत्ति बिना किसी न्याय पूर्ण कारण के छीनी जायगी तो उस कार्य-क्रम से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं होगा। आप लोग विश्वास रखिये कि मैं अपनी पूरी शक्ति और प्रभाव से श्रेणी-संघर्ष का विरोध करता रहूँगा। यदि किसी अवस्था में आप की सम्पत्ति अन्याय पूर्ण ढंग से छीनी जायगी, उस समय मैं आपकी रक्षा के लिये तैयार रहूँगा।"* यह है गांधीवाद की निष्पक्ष बुद्धि से सत्य-अहिंसा की परख।

इस वक्तव्य में 'न्यायपूर्ण' और 'अन्यायपूर्ण' शब्द केवल प्रपंच मात्र हैं। जिस भूमि पर जमींदार मेहनत नहीं करता, जिसे जमींदार ने अपने श्रम से तैयार नहीं किया, उस पर जमींदार का अधिकार किस न्याय से हो सकता है? और जमीन पर अधिकार के कारण किसान के श्रम से होने वाली पैदावार का बड़ा भाग जमींदारी को दिला देना कैसे न्याय हो सकता है? गांधी जी की दृष्टि में न्याय का अर्थ है, सम्पत्ति पर अधिकार और इस अधिकार से बिना श्रम किये मुनाफ़ा कमाने का अवसर। ऐसा न्याय ही रामराज्य के न्याय का आधार है। गांधीवाद के इस आदर्श को सामने रख कर उ० प्र० की गांधीवादी सरकार ने जमींदारों को बरसों तक अन्याय पूर्ण लूट करते रहने के पुरस्कार में मुआविजा या इनाम देकर जमींदारी उन्मूलन के नाटक से जनता को धोखा दिया है, वह जनता के सामने ही है।

शोषक और शोषित श्रेणी में मैत्री का अर्थ केवल शोषितों का अपने शोषण और दासता को चुपचाप सह कर उस का विरोध न करना ही हो सकता है; यही रामराज्य की व्यवस्था है। शोषित श्रेणी अपने शोषण को सहती रही है परन्तु उन का शोषण अब पराकाष्ठा को पहुँच गया है। पैदावार के छोटे-मोटे साधन अपने पास रख कर अपना निर्वाह करने वाली मध्यम श्रेणी

* M. K. Gandhi, Interview to Deputation of U. P. Zamindars. P. 62.

को पूंजीवादी औद्योगिक विस्तार ने समाप्त कर दिया है। आज लुहार लोहे की मिल का मजदूर बनकर, जुलाहा कपड़े की मिल का मजदूर बनकर और अपना इक्का हांकने वाला बस कम्पनी या रेलवे की मजदूरी करके ही जिन्दा रह सकता है। व्यापार भी धीरे-धीरे बड़े व्यवसाइयों और कारोबारी कम्पनियों के एक-छत्र शासन में सिमिटता जा रहा है। मलाई की वर्फ बना कर बेचने वाले अब आइसक्रीम कम्पनी की रेढ़ी चलाते हैं और रेवड़ी तथा छोटी-मोटी मिठाई बना कर बेचने वाले मीठी गोलियां बनाने वाली कम्पनी का माल बेचते हैं। इन छोटे-मोटे कारोबारों का अस्तित्व शीघ्र ही मिटता जा रहा है और समाज स्पष्ट रूप से शोषितों और शोषकों की श्रेणियों में बंटता चला जा रहा है।

गांधीवाद ने औद्योगिक विस्तार द्वारा शोषित श्रेणी की संख्या में बढ़ती होने और शोषित श्रेणी की शक्ति की वृद्धि में पूंजीवाद के लिये खतरे को अनुभव किया और इस कारण औद्योगिक विस्तार को रोकने और गृह-उद्योग द्वारा समाज की आवश्यकता पूर्ण करने की अयुक्ति-युक्त बातें भी चलाईं। परन्तु उन का कोई प्रभाव देश के आर्थिक कार्यक्रम पर नहीं पड़ सका क्योंकि यह सुझाव समाज के स्वाभाविक आर्थिक विकास के विरुद्ध थे। करोड़ों रुपया अखिल भारतीय चर्खा संघ और गांधी-आश्रमों को चलाने के लिये फूंक दिया गया। इस रुपये से कुछ समय तक गांधी-अनाथालयों में खद्दर की पैदावार और उन्नति के नाम पर कुछ गांधी-भक्तों का पालन होता रहा परन्तु अब चन्दे का धन समाप्त हो जाने पर वे टिमटिमा कर बुझते जा रहे हैं। आज खद्दर की बिक्री सरकारी नौकरों के हाथ जबरदस्ती खादी हुंडियां बेचकर की जाती है। गांधी आश्रमों को चालू रखने के लिये गांधीवादी सरकार रुपये में तीन आना सरकारी खजाने से घाटा पूरा करने के लिये दे रही है।

गांधीवाद को श्रेणी संघर्ष द्वारा समाज की व्यवस्था के परिवर्तन में हिंसा की सम्भावना दीखती है परन्तु पूंजीवादी व्यवस्था के परिणाम स्वरूप आर्थिक संकट द्वारा होने वाली मानवता की निरन्तर हिंसा उसे नहीं दिखाई देती। गांधीवाद का दृष्टिकोण पूंजीवाद के हित में इतना स्वार्थपूर्ण और संकीर्ण है कि वह पूंजीपति श्रेणी के शोषण के अधिकार की रक्षा के लिये मानवता की हिंसा को भी न्याय मान लेने का उपदेश देता है। भारत के राजनैतिक संघर्ष में गांधीवाद का काम व्यवस्था में क्रांति की सम्भावना को रोक कर पूंजीपति श्रेणी के स्वार्थों और अधिकारों की रक्षा करना ही रहा है।

स्वतंत्रता और आत्म-निर्णय का अधिकार पाने के भारतीय प्रजा के लिये ब्रिटिश शासन के विरुद्ध संघर्ष में सन् १९१९, १९२२, १९३१ और १९४१–४२ में ऐसे अवसर आये कि भारतीय प्रजा की शक्ति ब्रिटिश व्यवस्था को उखाड़ कर फेंक सकती थी। ऐसे अवसरों पर गांधी जी ने सदा ही ब्रिटिश शासन शक्ति के टूट कर गिरने के साथ देश में अव्यवस्था छा जाने की आशंका अनुभव की। अपनी इस आशंका को गांधी जी ने इस प्रकार प्रकट किया था 1 hope 1 am not expected knowingly to undertake a fight that must end in anarchy and red ruin (अर्थात्— "मुझ से यह आशा नहीं की जा सकती कि मैं जान बूझ कर ऐसा संघर्ष चलाऊं जिस का अनिवार्य परिणाम अव्यवस्था और लाल-विध्वंस हो !") * अव्यवस्था और लाल-विध्वंस शब्दों का अर्थ यहाँ स्पष्ट ही समाजवादी क्रांति द्वारा पूंजीवादी व्यवस्था टूटने से है। जन-क्रान्ति द्वारा ब्रिटिश शासन व्यवस्था टूटने में गांधी जी को सदा ही समाजवादी क्रान्ति द्वारा पूंजीपति श्रेणी के अधिकार छिन जाने का भय रहता था। ऐसे लालविध्वंस तथा अव्यवस्था के भय से उन्होंने भारतीय जनता के स्वतंत्रता संघर्ष के आक्रमण को रोक कर अनेक वार ब्रिटिश शासन की सहायता की।

गांधीवाद को ब्रिटिश शासन व्यवस्था टूटने के परिणाम में किस प्रकार की अव्यवस्था और लाल-विध्वंस का भय था ? गांधी जी के सामने रूस की १९१७ की समाजवादी-क्रान्ति और उस के संसार-व्यापी प्रभाव का उदाहरण मौजूद था। ज़ारशाही को समाप्त करने वाली रूस की समाजवादी क्रान्ति ने उस व्यवस्था की आधार आर्थिक व्यवस्था को भी पलट कर समाजवादी व्यवस्था कायम कर दी थी, क्यों कि शोषण से जनता की मुक्ति का केवल यही उपाय था। गांधी जी अच्छी तरह जानते थे कि क्रान्ति द्वारा ब्रिटिश शासन टूटने के परिणाम में इस शासन का आधार देश की पूंजीवादी व्यवस्था भी टूटेगी। देश की जनता में पूंजीवाद के प्रति असन्तोष और विरोध की भावना उन्हें चारों ओर दिखाई दे रही थी। वे देश के किसानों और मजदूरों में आर्थिक व्यवस्था में क्रान्ति की इच्छा और प्रयत्न को स्पष्ट अनुभव कर रहे थे। उन की राजनैतिक चतुरता यही थी कि देश के राजनैतिक संघर्ष का नेतृत्व साधनहीन

---

* Harijan, April, 194

श्रेणी के हाथ न जाने पाये। इसीलिये गांधी जी ने १९२१ में ही चेतावनी दे दी थी:—"अनेक मज़दूर नेता समझते हैं कि राजनैतिक उद्देश्य के लिये मज़दूरों का हड़ताल करना उपयोगी हो सकता है। परन्तु मेरी राय में ऐसे उद्देश्य के लिये मज़दूरों का हड़ताल करना बहुत ही भारी (most serious) भूल होगी। इसी प्रकार यह जानते हुए भी कि सरकार को परास्त करने का उपाय भूमि-कर अदा न करना है,[2]वे सदा इस कार्यक्रम का विरोध करते रहे।

इतना ही नहीं, गांधी जी यह खूब जानते थे कि जनता का राजनैतिक दृष्टि से सचेत अंग आर्थिक क्रान्ति चाहता है। वे यह भी जानते थे कि समाजवादी आदर्शों का विरोध करने से साधनहीन जनता उन के आध्यात्मिक जादू को ठुकरा देगी। इसलिये उन्होंने समाजवाद और कम्यूनिज्म के आदर्श को स्वीकार करने का भी एलान कर अपने आप को संसार का सब से बड़ा कम्यूनिस्ट और समाजवादी बताने में संकोच नहीं किया। परन्तु समाजवाद की प्राप्ति के लिये ऐसे उपाय बताए जिन से पूंजीवाद की ही रक्षा हो सकती थी। उन का उपदेश था:—"हमारे समाजवाद और कम्यूनिजम का आधार अहिंसा पर और पूंजीपति तथा साधनहीन श्रेणियों की मैत्री पर होना चाहिये।"[3] गांधीवाद की अहिंसा, हृदय परिवर्तन और श्रेणी मैत्री के उपदेशों की वास्तविकता पर हम पहले विचार कर चुके हैं। पूंजीवाद की रक्षा के इन साधनों को समाजवाद और कम्यूनिजम का आधार बनाने के उपदेश का प्रयोजन जनता को गुमराह करने के सिवा और क्या हो सकता था ?

गांधी जी के स्वराज्य का आदर्श था, देश में आर्थिक और राजनैतिक क्रान्ति न होने देकर ब्रिटिश शासक-शक्ति और भारत की पूंजीपति श्रेणी के बीच एक समझौते द्वारा देश का शासन इस देश की पूंजीपति श्रेणी के हाथ में ले लेना। इसी उद्देश्य से वे सदा ही आन्दोलन आरम्भ या समाप्त करते समय ब्रिटिश सरकार को चेतावनी देते रहते थे—"समझौते का द्वार खुला है।" पूंजीवादी व्यवस्था टूट कर पूंजीपति श्रेणी के हाथ से समाज के शासन का अधिकार छिन जाने की अपेक्षा, इस देश की साधनहीन

---

1. Young India. 16 Fed. 1921
2. „ 19 Jan. 1921
3. An autobiography, J. Nehru, 1937. p. 5 25.

श्रेणी के शासन की अपेक्षा, गांधी जी की दृष्टि में ब्रिटिश पूंजीपति श्रेणी का शासन ही श्रेय था। इसीलिए गांधी जी सत्य-अहिंसा के नाम पर, जो कि वास्तव में पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था की रक्षा थी, जन-क्रान्ति के आक्रमण से ब्रिटिश शासन की रक्षा करते रहे। अन्त में अन्तरराष्ट्रीय परिस्थितियों के कारण ब्रिटिश साम्राज्यशाही को उपनिवेशों में अपने सहायक ढूंढने की आवश्यकता अनुभव होने के कारण गांधी जी और इस देश की पूंजीपति श्रेणी को ब्रिटिश शासक शक्ति से समझौता कर शासन का अधिकार समेट लेने का अवसर मिल गया।

साधनहीन श्रेणी के आत्मनिर्णय का अधिकार पाने के संसार व्यापी संघर्ष के विरुद्ध ब्रिटिश साम्राज्यशाही और भारत के गांधीवादी पूंजीपति श्रेणी का यह समझौता इस देश पर 'राष्ट्रीय स्वतंत्रता' के नाम से लाद दिया गया है। परन्तु इस व्यवस्था में जनता ने न तो भूख से, न बेकारी से, स्वतंत्रता पाई है न दमन से यह शासन गांधीवाद के उद्देश्य, पूंजीवाद की रक्षा को साधनहीन श्रेणी के निरंकुश दमन द्वारा पूरा कर रहा है। गांधीवाद ने जैसे स्वतंत्रता के संघर्ष में जनता के हाथ में अधिकार आने के अवसर के प्रति विश्वासघात किये हैं वैसे ही भारत की मौजूदा गांधीवादी पूंजीवादी राष्ट्रीय सरकार देश और राष्ट्र के कल्याण के नाम पर पूंजीपति श्रेणी के स्वार्थ को पूरा करने के लिए देश की जनता के हित को और राष्ट्रीय करण की सफलता को बलिदान कर शोषण की रामराजी व्यवस्था को यथा सम्भव कायम रखने का यत्न कर रही है।

जनता के आत्मनिर्णय का अधिकार पा सकने के अवसर पर गांधीवाद ने किस प्रकार जनता के साथ विश्वासघात किया है और कांग्रेसी शासन जनता का दमन कर किस दिशा में, किस प्रयोजन से चल रहा है इस की ब्योरेवार विवेचना करने के लिये इन प्रश्नों की क्रमशः, ऐतिहासिक रूप में विवेचना करना उचित होगा।

रामराज्य की स्थापना

राष्ट्रीय-स्वतंत्रता के संघर्ष में गांधीवाद और कांग्रेस का विश्वासघात

कांग्रेस का प्रारम्भिक रूप :

कांग्रेस, कांग्रेसी सरकार और गांधीवाद के नेताओं का दावा है कि भारत में राष्ट्रीय स्वतंत्रता की भावना पैदा करने, इस देश को विदेशी शासन से मुक्त कराने और राष्ट्रीय सरकार की स्थापना का श्रेय राष्ट्रीय-कांग्रेस और गांधीवादी नीति को है।

इस दावे की सच्चाई परखने के लिये ऐतिहासिक रूप से यह देखना आवश्यक है कि देश की जनता में विदेशी शासन से मुक्ति की भावना को कांग्रेस और गांधीवादी नीति ने जन्म दिया या जनता में विदेशी-शासन से मुक्ति की इच्छा और प्रयत्न कांग्रेस और गांधीवादी नीति के जन्म से पहले भी मौजूद थे ?

गांधी जी के नाम का पहला परिचय भारतीय जनता को प्रथम महायुद्ध से कुछ पूर्व दक्षिण-अफ्रीका में भारतीय प्रजा के सम्पत्ति के अधिकारों की रक्षा के लिये सत्याग्रह का नेतृत्व करने वाले और इसी महायुद्ध के समय ब्रिटिश सरकार की सहायता के लिये भारतीय सेना की भरती कराने वाले राजनैतिक नेता के रूप में मिला था। राष्ट्रीय-कांग्रेस का जन्म उस से बहुत वर्ष पहले अर्थात् सन १८८५ में ही हो चुका था।

सन १८८५ से पूर्व देश की प्रजा में विदेशी शासन के प्रति असन्तोष और उस शासन से स्वतंत्र होने की इच्छा थी या नहीं ? जनता कांग्रेस का नाम और उस की पुकार सुने बिना विदेशी शासन का विरोध और उस से मुक्ति

का प्रयत्न कर रही थी ? इस प्रश्न का विश्वास योग्य उत्तर कांग्रेस के जन्म की परिस्थितियां और कांग्रेस को जन्म देने वाले ही दे सकते हैं।

यह बात जानी-मानी है कि भारतीय-राष्ट्रीय-कांग्रेस १ के जन्मदाता मि० ए० ओ० ह्यूम, सी० बी० थे। कांग्रेस का इतिहास लिखने वालों ने इस देश में राष्ट्रीय स्वतंत्रता का आन्दोलन आरम्भ करने के लिये मि० ह्यूम का बहुत गुणगान किया है और उन्हें राष्ट्रीय-कांग्रेस के पिता की पदवी दी है। कांग्रेस का दावा है कि देश में राष्ट्रीय स्वतंत्रता की भावना का आरम्भ कांग्रेस के जन्म से ही हुआ है। मि० ह्यूम ने कांग्रेस कीस्थापना कैसी परिस्थितियों में और किस प्रयोजन से की थी; यह बात स्पष्ट करने के लिये मि० ह्यूम की जीवनी के लेखक सर वेडन वर्न ने अपनी पुस्तक भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के पिता "एलन ओक्टावियो ह्यूम (Allen Octavio Hume, Father of Indian National Congress") में लिखा:—

"जिस समय लार्ड लिटन का शासन काल समाप्त हो रहा था, अर्थात् सन् १८७८–१८७९ में ह्यूम को निश्चय हो गया कि (भारत में) बढ़ती हुई अशान्ति और विद्रोह को रोकने के लिये उपाय किये बिना काम न चलेगा। सरकार के शुभचिन्तकों ने देश के कई भागों से ह्यूम को सूचना दी कि संकट दूर नहीं है। सर्वसाधारण जनता आर्थिक संकट से पिस रही है और शिक्षित लोगों में भी विद्रोह की भावना बढ़ रही है.........." (पृष्ठ ५०)

"सन १८७७ में देश में भयंकर अकाल पड़ा हुआ था। उसी समय महारानी विक्टोरिया को भारत की साम्राज्ञी घोषित करने के लिये दिल्ली में एक विराट दरबार कर के जशन मनाये गये। प्रजा के मन पर इस घटना का प्रभाव बुरा पड़ा। जनता में सभी ओर असंतोष प्रकट हो रहा था इसलिये अंग्रेज सरकार ने १८७८ में भारतीय पत्रों की स्वतंत्रता का दमन करने के लिये कानून बना दिया। परन्तु स्थिति इस से भी शान्त नहीं हुई। अगले वर्ष सरकार ने देश की प्रजा से आत्मरक्षा के लिये भी हथियार रखने का अधिकार छीन लिया।"

---

१ भारतीय-राष्ट्रीय-कांग्रेस को जन्म देने वाले अंग्रेज और भारतीय लोग किसी भारतीय भाषा का प्रयोग नहीं करते थे। कांग्रेस का जन्म इण्डियन-नेशनल-कांग्रेस के रूप में हुआ था। भारतीय-राष्ट्रीय-कांग्रेस कांग्रेस के आरम्भिक नाम का अनुवाद है।

सर विलियम वेडन वर्न का कहना है:—"इन प्रतिक्रियावादी काले कानूनों और जारशाही पुलिस के ढंग से शासन होने के कारण लार्ड लिटन के शासन काल में बगावत फूटना ही चाहती थी। यह सौभाग्य की बात थी कि मिस्टर ह्यूम और उन्हें परामर्श देने वालों ने समय पर आगे बढ़ कर स्थिति सम्भाल ली" पृष्ठ १०४। स्थिति सम्भालने का साधन था कांग्रेस की स्थापना।

कैसी स्थिति का उपाय करने के लिये मि० ह्यूम ने कांग्रेस को जन्म दिया और किस स्थिति को कांग्रेस ने सम्भाल लिया, उस का बहुत कुछ अनुमान वेडन वर्न के वर्णन से हो जाता है। अधिक स्पष्ट देखना चाहते है तो वेडन वर्न की पुस्तक में उद्धृत स्वयं मिस्टर ह्यूम के शब्दों में देख लीजिये: "देश के अनेक भागों से मिले विवरण देखकर मैं इस परिणाम पर पहुँचा कि बगावत किसी भी समय फूट सकती है। यह बात लार्ड लिटन के भारत से लौटने के पन्द्रह मास पहले का है। देश के सभी भागों से मंगाये गये लगभग तीस हजार गुप्तचरों के बयान मैंने देखे। देश के सब भागों (बर्मा, आसाम आदि छोटे-छोट प्रान्तों का वर्णन इस में न था) को अलग अलग बाँट कर यह रिपोर्ट सात बड़ी-बड़ी जिल्दों में तैयार की गई थी। रिपोर्टें प्रायः देशी भाषाओं में थी। मैंने उन के अंग्रेजी अनुवाद देखे। इन में जिलों, तहसीलों, थानों और शहरों से आये हुये बयान अलग-अलग थे। रिपोर्टें प्रायः निम्न श्रेणी के (किसान-मजदूर-कारीगर) लोगों के बारे में थी, जिन से पता चलता था कि ऐसे लोग आर्थिक संकट के कारण सर्वथा निराश होकर कह रहे हैं कि अब "कुछ" कर डाले बिना उपाय नहीं है। इस "कुछ" से लोगों का मतलब था बगावत (वायोलेंस) १। बहुत सी रिपोर्टों से पता चला कि लोग पुरानी तलवारें बर्छे और तोड़ेदार बन्दूकें जमा करके छिपा रहे हैं जो अवसर आने पर काम में लायी जायेंगी। इन रिपोर्टों से किसी संगठित बगावत का सूत्र नहीं मिल सकता था। यह भी नहीं कहा जा सकता था कि बगावत हमारी सरकार के ही विरुद्ध है। परन्तु असन्तोष के चिन्ह सब ओर थे और लूट-पाट

---

(१) मिस्टर ह्यूम ने अपने बयानों में "वायोलेन्स और बगावत शब्दों का प्रयोग एक ही अर्थ में किया है। इसलिये यह बहुत स्वाभाविक जान पड़ता है कि कांग्रेस सदा ही अंग्रेज सरकार को प्रजा की 'बगावत' या वायोलेन्स से बचाती रही क्योंकि इसी उद्देश्य के लिये कांग्रेस को बनाया गया था।

कत्ल, डकैती की तैयारियां खूब हो रहीं थी। यह तैयारियां निम्न-श्रेणी अर्थात् सब से गरीब श्रेणी के लोगों में ही हो रही थीं। जान पड़ता था कि यह छोटे-छोटे गिरोह किसी भी समय, पत्ते पर पड़ी जल की बूंदों की तरह ढुलक कर एक में मिल जांयगे और उस समय शिक्षित लोग भी इन के साथ मिलकर बग़ावत को संगठित रूप देकर देश भर में फैला देंगे और यह बगावत विदेशी सरकार के विरुद्ध-राष्ट्रीय बग़ावत का रूप ले लेगी।"

सर विलियम वेडर वर्न का कहना है कि आर्थिक संकट से व्याकुल निम्न-श्रेणी द्वारा देश में सरकार के विरुद्ध बग़ावत की तैयारी की खबरें जासूसों द्वारा पाकर मि० ह्यूम उस स्थिति की ओर वायसराय का ध्यान दिलाने के लिये शिमला पहुँचे। नये वायसराय लार्ड डफरिन चतुर और व्यवहार कुशल आदमी थे। उन्होंने लंदन में ब्रिटिश साम्राज्ञ की सरकार से परामर्श किया और मि० ह्यूम का सुझाव उन के सामने रखा कि—"भारत में गुप्त सशस्त्र-राष्ट्रीय-बगावत की तैयारी को रोकने का उपाय यही है कि देश की जनता के सामने एक ऐसा कानूनी आन्दोलन रख दिया जाये जिस के द्वारा लोग अपना असंतोष वैधानिक रूप से प्रकट कर सकें। इस से जनता की नब्ज़ का पता चलता रहेगा। इस आन्दोलन के द्वारा हम से सहयोग करने वाली भद्र-श्रेणी के भारतीय नेता स्वयं ही जनता को बगावत की राह से हटाकर कानूनी आन्दोलन की राह पर रखेंगे इस प्रकार आन्दोलन पर ब्रिटिश सरकार भी पूरा नियंत्रण रख सकेगी।"

कांग्रेस की स्थापना और उस की उपयोगिता के विषय में मि० ह्यूम जो कुछ स्वयं कह गये हैं और वेडर वर्न ने जिस प्रकार उन की चतुरता की प्रशंसा की है, इस से यह स्पष्ट हो जाता है कि कांग्रेस की स्थापना का प्रयोजन भारत में विदेशी शासन से मुक्ति की भावना उत्पन्न करना या राष्ट्रीय नहीं था बल्कि इस देश में मुक्ति के आन्दोलन की रोक-थाम ही था।

मि० ह्यूम ब्रिटिश साम्राज्ञ के विश्वासपात्र और जिम्मेवार कर्मचारी थे। उन्हें C. B. (Companion of Bath यानी सम्राट के अन्तरंग सखा और सहायक) का खिताब साम्राज्य की सेवा के पुरस्कार में दिया गया था। मि० ह्यूम ने अपने ही शब्दों में सरकार की जिस सेवा का उल्लेख किया है, उसे दूसरे शब्दों में जासूसी द्वारा जनता को राष्ट्रीय-स्वतंत्रता के लिये संघर्ष के मार्ग से हटाना ही कहा जायगा। यही था कांग्रेस की स्थापना का

प्रयोजन, जिसे कांग्रेस के नेता ब्रिटिश सरकार को देश की प्रजा की क्रान्ति और 'वायोलेंस' से बचा कर पूरा करते रहे हैं।

मि० ह्यूम को अपने काम और ओहदे से छुट्टी दे दी गयी और वे भारत में ब्रिटिश सरकार की रक्षा के लिये 'भारतीय-राष्ट्रीय-कांग्रेस' के संगठन में लग गये। मि० ह्यूम ने कैसा राष्ट्रीय आन्दोलन चलाया यह भी उन के ही शब्दों में देख लीजिये:—"हम लोगों के शासन के परिणाम में जो शक्तियां देश में पैदा हो रही थीं, उन के दबाव से बचने के लिये, उन शक्तियों के प्रभाव को बहा देने के लिये एक मोरी बना देना आवश्यक था। हमारी कांग्रेस से ज्यादा अच्छी तरह यह काम और किस ढंग से हो सकता था?" (पृष्ठ ९९)

कांग्रेस की स्थापना करने वाले 'कांग्रेस के पिता मि० ह्यूम' के शब्दों में कांग्रेस की स्थापना का उद्देश्य और कार्यक्रम स्पष्ट हो जाता है और हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि विदेशी शासन और उस की आर्थिक व्यवस्था से देश की प्रजा का शोषण और दमन होने के कारण प्रजा में इस शासन के प्रति विरोध और इस से मुक्ति की इच्छा मौजूद थी और मुक्ति के लिये प्रयत्न भी हो रहा था। ऐसी भावना ही राष्ट्रीय भावना कहलाती है। विदेशी सरकार इन सब से परिचित थी। विदेशी सरकार के प्रति विरोध और विदेशी दासता से मुक्ति के प्रयत्न की जड़ उस समय मेहनत करने वाली श्रेणी में ही थी। यह भी स्वाभाविक था क्यों कि शोषण मेहनत से पैदावार करने वालों का ही हो सकता है।

अंग्रेजी सरकार को भारत के जन-साधारण से ही भय था। अंग्रेजी सरकार की कूटनीति यही थी कि देश की राष्ट्रीय-भावना का नेतृत्व शोषक शासन का स्वाभाविक तौर पर विरोधी मेहनत करने वाली श्रेणी के हाथ से निकाल कर ऐसी श्रेणी के हाथ में दे दिया जाय जो विदेशी-शासन की सहयोगी बन सकती हो। इसी उद्देश्य से कांग्रेस को जन्म दिया गया।

कांग्रेस इसी उद्देश्य को पूरा भी करती रही है। यह स्पष्ट है कि कांग्रेस ने राष्ट्रीय भावना उत्पन्न नहीं की बल्कि देश की जनता में मौजूद संघर्ष और संग्राम के मार्ग पर चलने वाली राष्ट्रीय भावना को ब्रिटिश शासन की वैधानिकता से जकड़ कर ब्रिटिश सरकार के सहयोग से अपनी मांगें पेश करने के कानूनी आन्दोलन का रूप दे कर देश को मुक्ति के लिये संघर्ष के स्वाभाविक मार्ग से विमुख कर दिया।

तत्कालीन कांग्रेस ने राष्ट्रीय-भावना की बागडोर अपने हाथ में लेकर ब्रिटेन के प्रति राजभक्ति का और ब्रिटेन के न्याय में विश्वास रखने का प्रचार जनता में किया। उस समय कांग्रेस में मुख्यतः बड़े रईस, बड़े जमीन्दार, बड़े बैरिस्टर और बड़े अफ़सर ही भाग लेते थे। गवर्नर लोग कांग्रेस के अधिवेशनों की शोभा बढ़ाते थे और कांग्रेस 'ब्रिटिश सम्राट जिन्दाबाद' के नारे लगा कर राजभक्ति की शपथ लेती थी। उस समय कांग्रेस की राष्ट्रीय मांगें थीं :—ऊंची सरकारी नौकरियों में हिन्दुस्तानियों को हिस्सा मिले। वायसराय और गव'रों की कौन्सिलों में कुछ भारतीयों की नियुक्ति हो। बड़े भारतीय व्यापारियों को भी अंग्रेज व्यवसाइयों के समान सुविधायें मिल सकें। यह मांगें देश के स्वतंत्रता चाहने वाले जन-साधारण अथवा किसान मज़दूरों की नहीं हो सकती थी। यह माँगें तो विदेशी शासन की रक्षा कर के ही पूरी हो सकती थीं।

इस राष्ट्रीय आन्दोलन द्वारा देश की आर्थिक नेता सम्पन्न श्रेणी ने देश में अंगरेजी राज के प्रति राजभक्ति का प्रचार कर अंग्रेजों की गुलामी स्वीकार करने का और अंग्रेजों की कृपा द्वारा ही अपनी समस्याओं के समाधान करने का आदर्श जनता के सामने भी रख दिया। इस का परिणाम हुआ कि देश के अशिक्षित और आर्थिक रूप से कुचले हुए शोषित लोग अंग्रेजों को इस देश का न्याय पूर्ण शासक मानकर निराश हो बैठ गये और उन की सेवा में गौरव समझने लगे। उच्च शिक्षित वर्ग में एक नया कायरतापूर्ण दम्भ पैदा हो गया जिस में विदेशी शासक की कृपा से स्वार्थ साधना और देशभक्ति का मिथ्याभिमान जैसी परस्पर विरोधी भावनाओं का मेल था।

कांग्रेस यद्यपि राजभक्ति की शपथें खाती थी परन्तु देश में शिक्षा प्रचार, देशी व्यापार के लिये सुविधा की मांगें और अंग्रेजों के कठोर दमन के विरुद्ध मुलायम शब्दों में विरोध तो प्रकट करती ही थी। शासन के मद और अहंकार से अंधी अंग्रेज-नौकरशाही के लिये कांग्रेस का यह व्यवहार भी असह्य हो गया। कांग्रेस राजभक्ति की शपथ खाकर प्रति वर्ष सुधारों और सुविधा की मांग करती और सरकार उसे ठुकरा देती थी। मांग की जाने और मांग के ठुकराये जाने का परिणाम कांग्रेस का सरकार से निराश होना और सरकार का कांग्रेस से नाराज होना हुआ। यहाँ तक कि गोखले जैसे नरमदली नेता भी अंग्रेजी नौकरशाही से निराश होने लगे और कांग्रेस में बालगंगाधर तिलक, लाला लाजपतराय और विपिनचन्द्रपाल जैसे विदेशी सरकार का विरोध करने

वाले नेताओं का प्रभाव बढ़ने लगा। इस का कारण मार्क्सवाद का ऐतिहासिक सिद्धान्त—"शोषित और शोषक के हितों में विरोध होना आवश्यक है ही" था। १८९० में ही सरकारी कर्मचारियों को कांग्रेस में भाग न लेने का हुक्म दे दिया गया और १९०० में तो लार्ड कर्जन, अपने पूर्वाधिकारी वाइसराय के षड्यंत्र से बनी कांग्रेस को समाप्त कर देने का ही प्रण कर बैठे।

सन १९०५ में जापान द्वारा ज़ारशाही रूस के पराजय का प्रभाव भारत की शिक्षित मध्यम श्रेणी पर बहुत उत्साह-वर्धक पड़ा। इस घटना ने यूरोपियन जातियों की तुलना में एशिया की जातियों के निर्बल और अयोग्य समझे जाने की मिथ्या धारणा का निराकरण कर दिया। अंग्रेजी सरकार के प्रति राजभक्ति के प्रचार और अशिक्षित शोषित निम्नवर्ग में निराशा के बावजूद विदेशी शासन के प्रति घृणा और असंतोष की भावना देश में बढ़ ही रही थी। दक्षिण में किसानों के विद्रोह, बंगाल में बंग-भंग के विरोध स्वरूप स्वदेशी आन्दोलन द्वारा विदेशी के बहिष्कार और सशस्त्र क्रान्ति द्वारा ब्रिटिश शासन के विरोध की चेष्टायें और पंजाब में ग़दर के यत्न होते ही रहे। कांग्रेस ने ऐसे प्रयत्नों से न कभी अपना कोई सम्बंध स्वीकार किया न उन के प्रति सहानुभूति प्रकट की। वह इन प्रयत्नों की निन्दा कर जनता को राजभक्ति का ही उपदेश देती रही।

देश की शिक्षित निम्न-मध्यम श्रेणी में विदेशी शासन के प्रति विरोध की भावना की उपेक्षा करते रहना भद्र-श्रेणी की प्रतिनिधि कांग्रेस के लिये सम्भव न था। स्वदेशी आन्दोलन से व्यापारी श्रेणी ने खूब लाभ उठाया ही था। परिणाम यह हुआ कि १९०६ में कांग्रेस ने ब्रिटेन को अपनी राजभक्ति का निश्चय दिलाते हुये ब्रिटिश छत्रछाया में औपनिवेशिक स्वराज्य की मांग का प्रस्ताव पास कर दिया।

पहले महायुद्ध (१९१४-१९१८) से पूर्व कांग्रेस औपनिवेशिक स्वतंत्रता की मांग कर चुकी थी। अंग्रेजी सरकार ने देश में अपने विरुद्ध उत्पन्न होने वाली जिस भावना को जान लेने का साधन कांग्रेस को बनाया था वह काम कांग्रेस कर रही थी। परन्तु अंग्रेजी सरकार इस भावना को चुपचाप सह लेने के लिये तैयार नहीं थी। इसलिये कांग्रेस और अंग्रेजी सरकार में विरोध प्रकट हो रहा था। अंग्रेजी सरकार से कांग्रेस का विरोध किस प्रकार का था यह भी समझ लेना आवश्यक है।

समाज के व्यक्तियों के व्यवहार और विचार समाज में उन की परिस्थितियों के ही अनुरूप होते हैं। देश के जन-समाज में कांग्रेस से सम्बन्ध रखने वाले लोगों की क्या स्थिति थी ? उस समय भारतीय जनता का कौन अंग, राष्ट्रीय-प्रतिनिधित्व करने के नाम पर कांग्रेस के रूप में अंग्रेजी सरकार से सुविधाओं और अधिकारों की मांग करने के लिये संगठित हुआ था ? यह निर्विवाद है कि जनता का वही अंग या वर्ग कांग्रेस के रूप में संगठित हुआ था जो अधिक से अधिक शिक्षा का अवसर पा कर अंग्रेजों के सम्पर्क में आ रहा था। इस वर्ग के अंग्रेजों के सम्पर्क में आने का कारण यह था कि अंग्रेज सरकार देश का शासन और शोषण इसी वर्ग द्वारा, इस वर्ग को साधन बना कर, इन के सहयोग से ही कर सकती थी। यह लोग थे, बड़े-बड़े जमीदारों, अंग्रेजों की अदालतों से जीविका पाने वाले बड़े-बड़े वकील और बड़े-बड़े व्यापारियों के प्रतिनिधि। यह श्रेणी स्वयं पैदावार नहीं करती। इस श्रेणी का निर्वाह जनता पर शासन का साधन बन कर या अंग्रेजों द्वारा देश की लूट में बीच की कड़ी बनने से हो रहा था। यह लोग अंग्रेजी शासन व्यवस्था को उखाड़ फेकने की बात नहीं सोच सकते थे।

इस वर्ग का अंग्रेज सरकार से विरोध इस बात पर था कि अंग्रेज सरकार अथवा अंग्रेज शासक श्रेणी देशी जनता की लूट में इस श्रेणी को बहुत कम भाग और अवसर दे रही थी और शासन का सम्पूर्ण अधिकार भी अपने हाथ में समेटे हुए थी। कांग्रेस के रूप में राष्ट्रीय मांग पेश करने वाली श्रेणी देश की लूट से होने वाले मुनाफे में अधिक भाग और देश के शासन में अधिकार का अवसर चाहती थी। यह श्रेणी देश में अंग्रेजी शासन द्वारा कायम की गई व्यवस्था में साझी बन चुकी थी और उसे उखाड़ कर फेंकना नहीं चाहती थी। अंग्रेजी सरकार से कांग्रेस का विरोध बंटवारे के प्रश्न पर था। बँटवारा सहयोग समझौते और सहयोग से ही हो सकता है। इसीलिये, कांग्रेस बँटवारे के प्रश्न पर अंग्रेजी सरकार का विरोध करते रहने पर भी अंग्रेजों द्वारा जारी की गयी शासन और आर्थिक व्यवस्था की रक्षा में सहयोग देती रही। इसीलिये अंग्रेजों की शासन व्यवस्था की जड़ पर चोट करने वाले राष्ट्रीय-मुक्ति के क्रान्तिकारी आन्दोलनों और प्रयत्नों का कांग्रेस सदा ही विरोध करती रही और उन के दमन में अंग्रेज सरकार का साथ देती रही। कांग्रेस के इस राजनैतिक दृष्टिकोण और नीति का कारण देश की आर्थिक व्यवस्था में कांग्रेस

के नेताओं की श्रेणीगत स्थिति ही था। कोई भी श्रेणी अपनी आर्थिक स्थिति से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकती।

प्रथम महायुद्ध (१९१४–१९१८) से पूर्व भारतीय-राष्ट्रीय-कांग्रेस ने कभी कोई सार्वजनिक कार्यक्रम नहीं अपनाया। सर्व-साधारण जनता से कांग्रेस का कोई सम्पर्क भी नहीं था। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक और लाला लाजपत-राय आदि नेता ब्रिटिश राज द्वारा, विद्रोही भाषणों के कारण जेल गये परन्तु उन के वे कार्य कांग्रेस के कार्यक्रम का भाग नहीं थे। कांग्रेस में उन के लिये स्थान भी न रहा था। उन्हें अपना राजनैतिक संगठन 'होमरूल लीग' के नाम से पृथक ही बनाना पड़ा। बंग-भंग के विरोध में चलने वाला स्वदेशी आन्दोलन भी कांग्रेस के नेतृत्व में नहीं चला।

बंगाल में और पंजाब में भी सशस्त्र क्रान्ति के गुप्त आन्दोलन होते रहे। इन आन्दोलनों का आधार शिक्षित निम्न मध्यम-श्रेणी थी जो कि विदेशी शासन के आर्थिक शोषण से मध्यम श्रेणी की अवस्था से साधनहीन श्रेणी में धकेली जा रही थी। इस श्रेणी के आन्दोलनों से न केवल कांग्रेस का कोई सम्बन्ध ही था बल्कि कांग्रेस इन आन्दोलनों की निन्दा कर इन में चोट खाने वाले अंग्रेजी शासकों के प्रति सहानुभूति के प्रस्ताव पास कर अपनी राज-भक्ति का एलान करती रहती थी।

प्रथम महायुद्ध के समय भी अंग्रेजी सरकार ने जनता का विकट आर्थिक शोषण किया था और जनता में विदेशी शासन के प्रति घृणा उग्र हो रही थी। उस समय पंजाब और बंगाल में फिर सशस्त्र क्रान्ति की चेष्टायें हुईं। देश के दूसरे अनेक भागों में भी स्थाई रूप से सरकार का विरोध प्रकट हुआ। भारतीय सेना में भी विद्रोह की घटनायें हुईं। परन्तु राष्ट्रीय-कांग्रेस उस समय देश की जनता से विदेशी सरकार को सहयोग और सहायता देने की अपीलें कर रही थी।

उस समय तक गांधी जी कांग्रेस के एकछत्र नेता या अधिनायक नहीं बन पाये थे और न कांग्रेस ने गांधीवादी नीति को अपना कार्यक्रम बनाया था। उस समय अहिंसा को मनुष्य-जीवन का लक्ष्य मानने वाले और सिद्धान्त रूप से शस्त्र-शक्ति के प्रयोग और रक्तपात तथा युद्धों का विरोध करने वाले गांधी जी देश के किसानों को राज-भक्ति को धर्म मान कर अंग्रेजी सरकार की सेनाओं में भरती होने का उपदेश दे कर युद्ध में पूर्ण सहयोग दे रहे थे।

गांधी जी ने ब्रिटिश सेना की सहायता के लिये एक स्ट्रेचर बरदारों का स्वयं-सेवक दल लेकर मैसोपोटामिया के रणक्षेत्र में जाने की आज्ञा भी तत्कालीन वायसराय से मांगी परन्तु वायसराय ने गांधी जी को समझाया -- "इस कठिनाई के समय आपकी उपस्थिति हमारे लिये इसी देश में अधिक उपयोगी है।"

इस से पूर्व दक्षिण-अफ्रीका में रहते समय शान्ति और अहिंसा का उपदेश देने वाले गांधी जी बोअर युद्ध में अंग्रेजों की सहायता के लिये सैनिक भरती का कार्य कर चुके थे। बोअर युद्ध के विषय में विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि बोअर लोग अपनी स्वतंत्रता के लिये लड़ रहे थे और अंग्रेजी सेनायें बोअर लोगों को परास्त करके उन की स्वतंत्रता छीनने के लिये लड़ रही थीं। उस समय गांधी जी को बोअर लोगों की स्वतंत्रता के अधिकार की अपेक्षा अंग्रेजों का बोअरों का दमन और शोषण और अपनी राजभक्ति ही सत्य-अहिंसा जान पड़ी थी?

यह कल्पना कर लेना कि प्रथम महायुद्ध के समय तक गांधी जी का आध्यात्मिक विकास नहीं हुआ था, या उन्होंने शस्त्र-शक्ति के प्रयोग को पाशविक बल और हिंसा नहीं समझा था, उन के प्रति न्याय न होगा। प्रथम महायुद्ध से पूर्व गांधी जी दक्षिण-अफ्रीका में पाशविक बल को अमानुषिक और पाप बता कर सत्याग्रह के शस्त्र का उपदेश और उपयोग कर चुके थे। परन्तु प्रथम महायुद्ध के समय अंग्रेजों की सहायता से अपने श्रेणिगत स्वार्थ की पूर्ति का अवसर देख कर उन्होंने राजनैतिक दांवपेच के रूप में पाशविक शक्ति से असहयोग की नीति को छोड़ युद्ध के रक्तपात में सहयोग देना स्वीकार कर लिया। गांधी जी के इस दांवपेच का प्रयोजन १९२२ में उन पर अंग्रेजी अदालत में राजद्रोह के लिये चलाये गये मुकद्दमें में दिये गये उन के बयान से स्पष्ट हो जाता है। गांधी जी के अतिरिक्त सिद्धांत रूप से शस्त्र-शक्ति के प्रयोग और युद्ध का विरोध कर शान्ति का समर्थन करने वाले टालसटाय थोरे आदि और भी अनेक व्यक्ति संसार में हुए हैं। ऐसे लोगों ने स्वयं अपने देश के युद्ध में भाग लेने पर भी युद्ध में सहयोग नहीं दिया और अपने विश्वास के लिये अपने देश की जनता की लांछना और अपनी सरकारों का दण्ड भी सहा।

गांधी जी की नीति इस विषय में विचित्र रही है। भारत की जनता को उन्होंने अहिंसा का उपदेश दिया परन्तु अंग्रेजी सरकार के युद्धों में वे सहयोग देते रहे। सन १९३९-१९४४ के महायुद्ध में उन की युद्ध-विरोध की नीति बहुत

ही विचित्र थी। इस युद्ध के पहले भाग में गांधी जी ने अंगरेजों के प्रति सहानुभूति प्रकट करके सैद्धान्तिक असहयोग भी किया परन्तु सरकार को असुविधा में डालना हिंसा बताकर क्रियात्मक विरोध को अनुचित ठहराया। युद्ध के दूसरे भाग में, जब उन्होंने अंग्रेजों को जापान से हारते हुए देखा तो अंग्रेजों की ओर से अपनी सहानुभूति खींच कर युद्ध का सैद्धान्तिक विरोध करने का कार्यक्रम अपना लिया। यह कार्यक्रम ऐसा था कि अंग्रेज सरकार असुविधा तो अनुभव करे परन्तु उन की व्यवस्था भंग होकर देश में क्रान्ति हो जाने का भी अवसर न आये ! गांधी जी के इस युद्ध विरोद्ध पर हम यथा स्थान विचार करेंगे। अस्तु:—

शस्त्र प्रयोग और हिंसा के विरोधी और शान्ति और अहिंसा को जीवन का लक्ष्य मानने वाले गांधी जी ने बोअर युद्ध में और १९१४-१९१८ के महायुद्ध में अंग्रेज साम्राज्यशाही को भरसक क्रियात्मक सहायता क्यों दी ? इस का कारण गांधी जी ने स्वयं ही स्पष्ट कर दिया है। सन् १९२२ में उन पर राजद्रोह का मुकद्दमा चलाया जाने पर गांधी जी ने युद्ध के समय अंग्रेज सरकार पर किये हुए एहसानों की याद दिलाते हुए कहा था: "......सेवा के वे सब प्रयत्न करते समय मुझे यह आशा और उत्साह था कि यह सहायता देने से मेरे देश वासियों को (अंग्रेज़ों से) समानता का दर्जा और अधिकार मिल जायँगे।" अर्थात् गांधी जी उस समय शस्त्रशक्ति के प्रयोग के विरोधी सिद्धान्त को एक सौदे की आशा में छोड़ बैठे थे।

वास्तविकता यह है कि गांधी जी अपने 'देशवासियों को (वास्तव में केवल अपनी श्रेणी को) अंग्रेजों के समान दर्जा और अधिकार' दिलाने के लिये बोअर युद्ध में बोअर लोगों की स्वतंत्रता छीनी जाने में सहयोग दे रहे थे। इसी प्रयोजन से प्रथम महायुद्ध में भारतीय जनता को युद्ध के लिये सैनिक भरती होने और यथा-शक्ति चन्दा देने का उपदेश देकर वे देश की जनता के रक्त और धन को मूल्य रूप में चढ़ा रहे थे। जनता का रक्त बेचकर अपने 'देशवासियों' (अपनी श्रेणी) के लिये अधिकार पाने की योजना को अहिंसा नहीं कहा जा सकता। 'मेरे देशवासियों' से गांधी जी का अभिप्राय क्या था, यह आने वाले वर्षों में ब्रिटिश विरोधी राष्ट्रीय-संघर्ष में प्रकट होने वाली गांधी जी की नीति से स्वयं ही स्पष्ट हो जाता है।

प्रथम महायुद्ध के बाद भारत की राजनैतिक मुक्ति का संघर्ष गांधी जी के

एकाधिपत्य या तानाशाही में ही चला और कांग्रेस ने गांधीवादी नीति को अपना राजनैतिक धर्म और कार्यक्रम स्वीकार कर लिया। कांग्रेस को गांधीवाद की देन यही थी कि जनता की धार्मिक भावनाओं के आधार पर कांग्रेस को जनता का सार्वजनिक सहयोग मिलता रहा परन्तु यह सार्वजनिक आंदोलन क्रान्ति का रूप न लेकर इस देश की पूंजीपति श्रेणी और ब्रिटिश शासन में सौदा और समझौता कर सकने का ही साधन बना रहा।

× × ×

कांग्रेस की गांधीवादी-सत्याग्रह की नीति

प्रथम महायुद्ध (१९१४-१९१८) का प्रभाव अन्तरराष्ट्रीय राजनैतिक अवस्था और इस देश की अवस्था पर भी गहरा पड़ा। अंग्रेज अमरीका की सहायता से युद्ध तो जीत गये परन्तु उन की अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक तथा सैनिक शक्ति और प्रतिष्ठा को बहुत धक्का लगा। अंग्रेजी सेनाओं के चार वर्ष तक जर्मन सेनाओं से मार खाते रहने के कारण इस देश की प्रजा पर अंग्रेजों का पहले जैसा रोब न रहा। इस के साथ ही १९१७ की रुसी समाजवादी क्रान्ति का भी प्रभाव सम्पूर्ण संसार की जनता पर पड़ा। राष्ट्रीय पूंजीवादी शोषण से मुक्ति और किसान-मजदूर राज की सम्भावना का एक नया राजनैतिक आदर्श संसार की जनता के सामने आ गया। इस देश की जनता के सामने भी उदाहरण आया यदि रुस की किसान-मजदूर जनता रुस की प्रबल जारशाही जैसे निरंकुश शासन को उखाड़ कर अपना शासन कायम कर सकती है तो हमारे लिये भी निराशा का कारण नहीं। इस क्रान्ति के उदाहरण से भारत के विदेशी शासक भी अपने शासन की रक्षा के लिये पहले की अपेक्षा और अधिक सतर्क होने लगे।

अंग्रेज सरकार जानती थी कि रुसी क्रान्ति का प्रभाव भारत की प्रजा के भिन्न-भिन्न राजनैतिक दृष्टिकोण रखने वाले लोगों पर भिन्न-भिन्न ढंग से पड़ेगा। ब्रिटिश सरकार के सहयोग से सुधारों और अधिकारों की मांग का वैधानिक आन्दोलन चलाने वालों के सन्तोष के लिये सरकार ने, युद्ध में

उन की सहायता और सहयोग के पुरस्कार स्वरूप १६१७ में ही 'मांटेगू सुधार योजना' के नाम से सुधारों का एक आश्वासन दे दिया था। उस समय इन सुधारों की कोई योजना तैयार नहीं थी। योजना बनाई गई १६१६ में। इस से स्पष्ट है कि सुधारों का यह आश्वासन इस देश पर रूसी क्रान्ति के प्रभाव का उपाय करने के लिये ही था। कांग्रेस के नेतृत्व में वैधानिक मांगें करने वालों को अपने विचार में यों सन्तुष्ट कर के अंग्रेज सरकार ने विदेशी-शासन का सभी प्रकार से विरोध करने वाले, "अवैधानिक-क्रान्तिकारी' लोगों का भी उपाय करना आवश्यक समझा। ब्रिटिश सरकार इसी प्रकार के लोगों को अपना वास्तविक शत्रु समझती आई थी। मि० ह्यूम और उन के भारतीय सहयोगियों ने कांग्रेस का संगठन ही इस उद्देश्य से किया था।

युद्ध के समय जब गांधी जी और कांग्रेस (अथवा पूंजीपति वर्ग) भारतीय प्रजा को सब प्रकार से अंग्रेज सरकार की सहायता करने के लिये प्रोत्साहित कर रहे थे, भारत के राजनैतिक दृष्टि से अचेत किसान और मज़दूर आर्थिक संकट से पिस कर पेट की रोटी के लिये अंग्रेज़ी सेनाओं में भरती हो रहे थे, उस समय भी राजनैतिक दृष्टि से सचेत देश की शिक्षित निम्न-मध्यम श्रेणी जिसे देश की साधनहीन जनता का शिक्षित और सचेत अंग कहा जा सकता है, अपने शत्रु विदेशी शासन को संकट में देख कर सशस्त्र क्रान्ति के लिये सरकारी फौजों में विद्रोह के प्रचार से और अंग्रेज शासकों पर आक्रमण कर जनता को क्रान्ति के लिये उत्साहित करने का यत्न कर रही थी। अंग्रेजी सरकार ने विद्रोही जनता के आन्दोलनों और प्रयत्नों को कुचलने के लिये युद्ध के समय दमन के विशेष अधिकार अपनी नौकरशाही को दे दिये थे। सरकार युद्ध के बाद भी ऐसे लोगों से निश्शंक नहीं हो सकती थी। युद्ध के समय के दमनकारी कानूनों को बाद में भी जारी रखने के लिये सरकार ने अंग्रेज़ जज 'रौलेट' के सभापतित्व में एक जाँच-कमेटी बनाकर इस बात के प्रमाण एकत्र किये कि भारत में व्यापक विद्रोह और सशस्त्र-क्रान्ति का आन्दोलन गुप्त रूप से चल रहा है। इस रिपोर्ट (Rowlett Committee Report) में गुप्त सशस्त्र-क्रान्ति के जिन प्रयत्नों का प्रमाण सहित उल्लेख किया गया है उन्हें 'व्यक्तिगत आंतकवादी आन्दोलन' के तिरस्कार पूर्ण नाम से टाल देना उचित नहीं जान पड़ता। परन्तु कांग्रेस उस आन्दोलन को सदा 'व्यक्तिगत-आतंकवाद' कह कर उस का तिरस्कार और विरोध करती आयी है। अंग्रेज

सरकार उस आन्दोलन को उपेक्षा के योग्य न मानकर उसे सदा अपना असली शत्रु समझती रही और कांग्रेस को अपना असन्तुष्ट सहयोगी । १

देश की आर्थिक रूप से निराश और असन्तुष्ट जनता में रूसी समाजवादी राजनैतिक क्रान्ति के उदाहरण से और अधिक विद्रोह फैलने की आशंका समझ कर सरकार ने रौलेट-कमेटी की रिपोर्ट के आधार पर देश के राजनैतिक दमन के लिये 'रौलेट-बिल' के नाम से एक नया कानून बना दिया । देश की जनता इस कानून को सिर झुका कर स्वीकार कर लेने के लिये तैयार नहीं थी । 'रामराज्य' का यह एक भयानक विद्रूप है कि 'रौलेट-बिल' की तुलना कांग्रेसी-सरकार द्वारा जारी किये गये 'सार्वजनिक शान्ति और सुरक्षा कानू.' से की जाये तो वह इस 'रामराजी' कानून से कहीं अधिक कम निरंकुश पाया जायेगा ।२

प्रथम महायुद्ध के समय अंग्रेज-सरकार को दी हुई सहायता के मूल्य में 'मांटेगू-सुधार' के आश्वासन से कांग्रेस के नेतृत्व में चलने वाली जनता असन्तुष्ट थी । इस पर १९१९ मार्च में सरकार ने 'रौलेट-बिल' लागू करने की घोषणा कर दी । जनता अपना असन्तोष प्रकट करने के लिये उफन रही थी । जनता के इस असन्तोष का नेतृत्व करने के लिये गांधी जी ने सत्याग्रह-लीग की स्थापना की । सत्याग्रह-लीग की स्थापना का एक ही प्रयोजन हो सकता था, 'रौलेट-बिल' के विरुद्ध सत्याग्रह कर के उसे मन्सूख करवा देना । भारत के राजनैतिक संघर्ष में सत्याग्रह की नीति का यह आरम्भ था । सत्याग्रह की नीति ने देश की मुक्ति के राजनैतिक संघर्ष का दिशा निर्देश किस प्रकार किया, यह ठीक से समझ पाने के लिये सत्याग्रह की नीति का परिचय आवश्यक है । सत्याग्रह की नीति को कार्यक्रम के रूप में अपनाया कांग्रेस ने क्यों कि कांग्रेस राजनैतिक संघर्ष में सार्वजनिक सशस्त्र क्रान्ति की विरोधी थी और 'वैधानिक' समझौते

---

१ यह बात मैं १९३२, फरवरी में सशस्त्र-क्रान्तिकारी आन्दोलन के सिलसिले में हुई अपनी गिरफ्तारी के बाद उ० प्र० के तत्कालीन इन्सपेक्टर जनरल-पुलिस मि० हालैण्डस से हुई बातचीत के आधार पर लिख रहा हूँ । इस घटना का वर्णन और वार्तालाप उस समय के ऐतिहासिक वर्णन 'सिंहावलोकन' में मिलेगा—ले०

२ सार्वजनिक शान्ति सुरक्षा कानून पर इसी पुस्तक के अन्तिम भाग 'रामराज्य के वरदान' में उस की धाराओं के विवेचन द्वारा विचार किया गया है । ले०

के आन्दोलन को ही अपना मार्ग समझती थी। सत्याग्रह की नीति उन्हीं के लिये उपयोगी हो सकती थी इस लिये राजनैतिक-संघर्ष की सत्याग्रही नीति को विदेशी शासन के विरुद्ध सार्वजनिक विद्रोह और क्रान्ति के कार्यक्रम और नीति की प्रतिद्वन्दी और विरोधी मानना पड़ेगा।

सत्याग्रह की नीति को उस के शब्दों के अर्थ के अनुसार समझ लेने से भारी भ्रम का अवसर पैदा हो जाता है। हमें यह स्वीकार कर लेना पड़ता है कि 'सत्याग्रही' जिस बात की मांग कर रहा है, वह बात सर्व-सम्मति से; जिस व्यक्ति, दल या संस्था के विरुद्ध सत्याग्रह किया जा रहा है, उस की दृष्टि में भी; सत्य, उचित और न्याय है। परन्तु जिन लोगों के विरुद्ध सत्याग्रह किया गया, उन लोगों ने किसी भी सत्याग्रह-आन्दोलन में सत्याग्रहियों की मांग को नैतिक, न्याय या सत्य स्वीकार नहीं किया। उदाहरणतः हिन्दू धर्म के रूढ़िवादी रूप में श्रद्धा और विश्वास रखनेवालों ने अछूतों के मन्दिर प्रवेश के लिये सत्याग्रह करने पर उसे अनाचार ही समझा है। ऐसे लोगों में महामना मदनमोहन मालवीय जी जैसे अछूतों के मन्दिर-प्रवेश के विरोधी लोगों की ईमानदारी या सत्य की धारणा के विषय में तो शंका नहीं की जा सकती। पाकिस्तान के भाग का पचास करोड़ रुपया दिलाने के लिये गाँधी जी ने जो अनशन-सत्याग्रह हिन्द-सरकार के विरुद्ध किया था, उस से हिन्दुस्तान की हिन्दू प्रजा के मन पर कोई नैतिक प्रभाव नहीं पड़ा। उसे हिन्द-सरकार और हिन्दुस्तान की प्रजा ने केवल मजबूरी में ही सहा। स्वयं गांधीवाद को पनपाने के लिये साधनों को पूरी सहायता देने वाले पूंजीपतियों और स्वयं गांधी जी ने भी मजदूरी बढ़ाये जाने की माँग पर मज़दूरों के सत्याग्रह को सदा अन्याय ही बतांया है। स्वयं गांधीवादी कांग्रेसी सरकार ने ही अनशन करने वाले सैकड़ों सत्याग्रहियों की मांगों को अयुक्तियुक्त कहकर ठुकरा दिया है। कांग्रेस सरकार आज राजनैतिक सत्याग्रह को विद्रोह का एक अनुचित उपाय मात्र कह कर अपनी शस्त्र-शक्ति से उस के दमन की नीति को खुले आम अपना चुकी है। अपनी मांग या पक्ष को सर्वमान्य सत्य घोषित कर देने को हम सत्याग्रही के दृढ़ विश्वास का प्रमाण मान सकते हैं परन्तु यदि कोई व्यक्ति बौद्धिक निष्पक्षता का दावा करता है तो उस की दृष्टि में अपनी मांग को सर्व-मान्य सत्य या न्याय कहना सत्याग्रही का दम्भ और अहंकार मात्र ही होगा।

क्रियात्मक रूप से सत्याग्रह का अर्थ विपक्षी के विरुद्ध शस्त्रों का प्रयोग

किये विना उस से असहयोग कर अपनी मांग या आग्रह के लिए जनता की सहानुभूति और सहयोग पाकर विपक्षी को परास्त कर देने का कार्यक्रम ही है। सभी देशों की साधनहीन श्रेणी लाचारी के अवसर पर हड़ताल के रूप में सत्याग्रह के कार्यक्रम का उपयोग करती आई है। सत्याग्रह का वास्तविक अर्थ हड़ताल ही है। गांधी जी की देन कांग्रेस को यह है कि उन्होंने राजनैतिक हड़ताल के कार्यक्रम पर आध्यात्मिकता का रंग चढ़ा दिया और साधनहीनों के इस कार्यक्रम का उपयोग देश की साधनवान श्रेणी के हितसाधन के लिये कर दिखाया।

राजनैतिक शस्त्र के रूप में सत्याग्रह का प्रयोग पहले-पहल गांधी जी ने भारतीय प्रजा के अधिकारों की रक्षा के लिये दक्षिण-अफ्रीका में किया। भारतीय प्रजा के रूप में दक्षिण अफ्रीका में अधिकतर थे भारतीय कुली और कुछ भारतीय व्यापारी। दक्षिण-अफ्रीका में कुली का काम करने वाले भारतीय 'शर्त-बन्द-मजदूरी' (Indentured Labour) में भरती हो कर गये हुए लोग थे। शर्त-बन्द-मजदूरी साधनहीन जनता के शोषण का एक अमानुषिक और अत्यन्त अन्याय पूर्ण ढंग था, यह बात अन्तरराष्ट्रीय तौर पर स्वीकार कर ली गई और ब्रिटिश सरकार इस प्रथा को सभी उपनिवेशों में बन्द कर देने के लिये हो गई। दक्षिण अफ्रीका में पीड़ित भारतीय शर्त-बन्द कुलियों के प्रश्न पर भारत में भी भयंकर आन्दोलन चला। इन मजदूरों की अवस्था के सम्बन्ध में स्वयं गांधी जी का कहना था कि "इन मजदूरों की अवस्था मनुष्यत्व से गिरी हुई है।"

दक्षिण अफ्रीका में गांधी जी ने सत्याग्रह के कार्यक्रम का प्रयोग शर्तबंद कुलियों को मनुष्यत्व का अधिकार दिलाने के लिये नहीं किया। सत्याग्रह के कार्यक्रम का प्रयोग किया दक्षिण अफ्रीका में बसे हुये भारतीयों के व्यापार द्वारा धन कमा सकने के और इन व्यापारियों द्वारा संचय की हुई सम्पत्ति पर उन के अधिकारों की रक्षा के लिये। दक्षिण-अफ्रीका में सत्याग्रह आरम्भ करने के कारणों के बारे में गांधी जी लिखते हैं "However even the Laws to which they (i. e. Indentured Labourers) are subject are mild in comparison to the ordinance outlined above (i. e. for Traders) and the penalties they impose are a mere fleabite when compared with penalties

laid down in the Ordinance"* अर्थात् "व्यापारियों के विरुद्ध जो कानून जारी किये गये उन के मुकाबले में मजदूरों पर अन्याय करने वाले कानून मामूली ही थे। व्यापारियों पर जुल्म के मुकाबले में मजदूरों पर होने वाले अन्याय ऐसे ही थे। जैसे मक्खी का काट जाना हो।"

गांधी जी के शब्दों में भारतीय व्यापारियों के विरुद्ध ऐसे कठोर कानून बना दिये गये कि —"इन कानूनों से दक्षिण-अफ्रीका में लाखों ही रुपये का कारोबार फैलाये हुए भारतीय व्यापारियों को भारत लौटा दिया जा सकता था और उन का कारोबार मिट्टी में मिल जा सकता था......" परन्तु शर्तबन्द मजदूरी के नियमों के अनुसार तो भारतीय मजदूर दक्षिण-अफ्रीका में मजदूर बन कर रहने की मियाद के बाद न तो वहाँ रह कर कोई कारोबार कर सकता था और न अपना घर ही वहाँ बना सकता था और न मजदूरी की अवस्था असह्य अनुभव होने पर मजदूरी छोड़ कर अपने देश को ही लौट सकता था। स्वयं गांधी जी ने स्वीकार किया है कि भारतीय मजदूरों की अवस्था 'मनुष्यत्व से गिरी' हुई थी। मजदूरों की यह अवस्था गांधी जी की दृष्टि में मक्खी के मामूली डंक की तरह ही सह्य थी परन्तु सम्पत्ति संचय करते हुये भारतीय व्यापारी का दक्षिण-अफ्रीका से निकाल दिया जाना प्राण-घातक प्रहार था।

गांधी जी ने इन मजदूरों को मनुष्यत्व का अधिकार दिलाने के लिये सत्याग्रह की आवश्यकता अनुभव नहीं की। उन्होंने सत्याग्रह की आवश्यकता अनुभव की भारतीय व्यापारियों के लाखों रुपये के फैले हुए व्यापार और दक्षिण-अफ्रीका में कमाकर संचय की हुई उन की सम्पत्ति की रक्षा के लिये। गांधी जी की दृष्टि में 'सत्य' का अर्थ मनुष्यत्व नहीं बल्कि सम्पत्ति पर अधिकार की रक्षा कर सकना ही था। सत्य का अधार सम्पत्ति की स्वामी श्रेणी की परम्परागत न्याय की धारणा के सिवा और क्या है? सत्य की इस धारणा के अनुसार साधनहीन श्रेणी के जीवन का महत्व साधनवान श्रेणी के लिये मुनाफ़ा कमा सकने का अवसर देना है। रामराज्य के न्याय की आधार शिला यही सत्य है। दक्षिण अफ्रीका के मजदूरों के लिये गांधी जी का उपदेश उस समय भी यही था कि उन्हें अपने मालिकों के प्रति धर्म का पालन कर प्रेम से ही उन का हृदय परिवर्तन करने का यत्न करना चाहिये, मनुष्यत्व के अधिकार के

---

* Satyagrah in South Africa by M. K. Gandhi; p. 66

लिये सत्याग्रह, हड़ताल नहीं। सत्याग्रह और हड़ताल करने का अधिकार केवल मालिक श्रेणियों के लिये ही है जैसे वेद पढ़ने का अधिकार केवल ब्राह्मण को था। यह है रामराज्य का विधान साधनहीन श्रेणी के लिये।

सत्य के इस आधार को गांधी जी ने आन्दोलन का कैसा क्रियात्मक रूप दिया ? सत्याग्रह की नीति में यही सब से अधिक महत्वपूर्ण बात है। दक्षिण अफ्रीका में भारतीय व्यवसाइयों के सम्पत्ति पर अधिकार और सम्पत्ति कमाने के अधिकार की रक्षा का आन्दोलन चला 'मनुष्यत्व से गिरे हुए' भारतीय मज़दूरों की सत्याग्रही सेना बनाकर। व्यवसाइयों के हित की रक्षा के लिये मज़दूरों का उपयोग कर सकने की अपनी नीति के बारे में गांधी जी कहते हैं—"या तो दक्षिण-अफ्रीका के व्यापारियों को यह खयाल ही नहीं आया कि (व्यापारियों के हित की रक्षा का) आन्दोलन चलाने में कुलियों की सहायता ली जा सकती है, या उन्हें भय था कि कुलियों को आन्दोलन में शामिल करने से व्यापारियों को हानि ही न हो जाय।" गांधी जी ने इस का उपाय ढूंढ़ निकाला सत्याग्रह आन्दोलन के उद्देश्य और ध्येय में कुलियों की अवस्था में सुधार की कोई मांग न रख कर उन्होंने भारतीय कुलियों को समझाया कि यह कानून भारत का राष्ट्रीय-अपमान है और इस में प्रत्येक भारतीय का अपमान है। गांधी जी ने कुलियों को समझाया—"भारत की लाज हमारे हाथ है।" 'भारत के राष्ट्रीय-सम्मान' की रक्षा के लिये प्रत्येक भारतीय को, अपने स्वार्थ और आर्थिक प्रश्नों का विचार छोड़ कर लड़ना चाहिए। इस सत्याग्रह युद्ध में गांधी जी ने स्त्रियों को आगे किया। स्त्रियों के गिरफ्तार होने से कुली लोग जोश में आकर सत्याग्रह के शान्तिमय युद्ध में अपने आपको निछावर करने के लिये तैयार हो गये।

जो कुली अपने तन, प्राण और मनुष्यत्व की रक्षा के लिये मुंह खोलने का साहस नहीं कर सकते थे वे भारत के राष्ट्रीय-सम्मान के नाम पर दक्षिण-अफ्रीका में भारतीय व्यवसाइयों के लाखों रुपये के फैले हुए व्यापार के अधिकारों और उन की सम्पत्ति की रक्षा के लिये सत्याग्रह के रण-क्षेत्र में कूद पड़े। कहा जाता है, सत्याग्रह 'गांधी-स्मट्स' समझौते के रूप में सफल हुआ कि नये कानूनों का उपयोग—"सम्पत्ति के अधिकार का उचित ध्यान रखकर" किया जायगा। दक्षिण-अफ्रीका में भारतीय कुलियों की न सम्पत्ति थी और न उन का कोई सम्पत्ति का अधिकार ही था।

सत्याग्रह की इसी नीति को भारत के राजनैतिक संघर्ष में अक्षरशः व्यवहार में लाया गया। आन्दोलन भारत की राष्ट्रीय-स्वतंत्रता के नाम पर चला। राष्ट्रीय-स्वतंत्रता के प्रश्न में देश की साधनहीन श्रेणी-किसान, मज़दूर और नौकरी-पेशा लोगों की आर्थिक समस्याओं को नहीं आने दिया गया और देश के शासन का अधिकार, सार्वजनिक आन्दोलन की शक्ति के आधार पर 'सम्पत्ति का मालिक श्रेणी' के हाथ में आ गया।

सत्याग्रह के कार्यक्रम से राष्ट्रीय-स्वतंत्रता के लिये सार्वजनिक आन्दोलन का आरम्भ रौलेट बिल के विरोध में सत्याग्रह आन्दोलन करने से हुआ। रौलेट-बिल वैधानिक और शान्तिमय आन्दोलन चलाने वाले लोगों की व्यक्तिगत स्वतंत्रता में हस्तक्षेप नहीं करता था। रौलेट-बिल सर्वसाधारण जनता को कांग्रेसी राज के 'सार्वजनिक शान्ति और सुरक्षा' कानून से अधिक व्यक्तिगत स्वतंत्रता दिये हुए था। परन्तु वह अंग्रेजी राज के चले आये क्रम में दमन बढ़ाने का प्रयत्न अवश्य था। पूंजीपति श्रेणी के प्रतिनिधि के रूप में गांधी जी युद्ध के समय सरकार की सेवा के उपलक्ष में पाये 'मांटेगू सुधारों' के आश्वासन से असन्तुष्ट थे। जनता में रौलेट-बिल के प्रति असन्तोष देख कर उन्होंने सत्याग्रह लीग की स्थापना कर के रौलेट-बिल के विरोध का नेतृत्व अपने हाथ में ले लिया। बिल के विरोध में ७ अप्रैल १९१९ को हड़ताल और काले झण्डों द्वारा शान्तिमय विरोध प्रकट करने का आदेश दिया गया। विदेशी शासन से असन्तुष्ट जनता ने अपना विरोध जिस उग्र रूप में प्रदर्शित किया उस से सरकार के पांव तो डगमगाये ही परन्तु उस से गांधी जी का कलेजा दहल गया।

गांधी जी की योजना सरकार को केवल जनमत का बल दिखा कर अपनी वैधानिक मांगें मनवाने की थी परन्तु जनता ने अपनी सामूहिक शक्ति से शासन की व्यवस्था पर अधिकार कर लेने के प्रयत्न शुरू कर दिये। प्रायः सभी नगरों में सरकार ने जनता पर गोलियाँ चलाईं। पंजाब के नगरों पर हवाई जहाजों से बम वर्षा की गई परन्तु जनता जान पर खेल कर ब्रिटिश व्यवस्था को चकना चूर कर देने की भावना से आगे ही बढ़ती जा रही थी। जनता केवल शान्तिमय वैधानिक उपायों से असन्तोष ही नहीं प्रकट कर रही थी वल्कि विदेशी सरकार की व्यवस्था को तोड़ डालने का यत्न रही थी। जनता ने सत्याग्रह लीग के नेता के आदर्शों की प्रतीक्षा नहीं की। जनता ने अपना ध्येय समझ लिया था, विदेशी व्यवस्था की इमारत को गिरा देना। इस व्यवस्था

के टूट जाने पर जाने कैसी व्यवस्था बनती ? गांधी जी को व्यवस्था के टूट जाने का भय दिखाई दे रहा था। इसलिये ठीक उस समय, जब दमन के मुकाबले में भी जनता का आन्दोलन आगे ही बढ़ रहा था, गांधी जी ने ईश्वरीय प्रेरणा से अनुभव किया कि उन्होंने 'हिमालय के समान भारी भूल' कर दी है। गांधी जी ने आन्दोलन रोक देने का आदेश दे दिया।

वह 'हिमालय के समान भारी भूल' क्या थी ? क्या सार्वजनिक विद्रोह से ब्रिटिश-व्यवस्था के टूट जाने पर रौलेट-बिल को समाप्त करने का उद्देश्य पूरा न होता ? जहाँ तक जनता के संघर्ष के लिये तैयार का प्रश्न हो सकता था, इस विषय में ब्रिटिश सरकार की राय थी कि "यह बात अस्वीकार नहीं की जा सकती कि आन्दोलन ब्रिटिश-राज्य के विरुद्ध संगठित विद्रोह के रूप में चल रहा था।"1

भारी भूल यह थी कि जनता जिस प्रकार ब्रिटिश शासन की अवज्ञा कर व्यवस्था पर अपना अधिकार जमाने की कोशिश कर रही थी, उस से ब्रिटिश शासन द्वारा कायम की हुई आर्थिक व्यवस्था भी सुरक्षित नहीं रह सकती थी ऐसी अवस्था में शासन की व्यवस्था, ज्यों की त्यों एक समझौते द्वारा भारत की पूंजीपति श्रेणी के हाथ में आ जाने का अवसर नहीं हो सकता था। क्योंकि सत्याग्रह-लीग द्वारा आरम्भ किया गया आन्दोलन ऐसे रूप में नहीं चल सका कि सम्पत्ति के अधिकारों और मुनाफ़ा कमाने के अधिकार के पूंजीवादी न्याय की रक्षा निश्चित रूप से हो सकती, गांधी जी ने ईश्वर की प्रेरणा से ब्रिटिश शासन और पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था की रक्षा के लिये आन्दोलन को स्थगित कर देना ही आवश्यक समझा।

१६१६ के रौलट-बिल विरोधी आन्दोलन का एक और महत्पूर्ण पक्ष है। ब्रिटिश सरकार की रिपोर्ट उस आन्दोलन के विषय में कहती है:—"इस सार्वजनिक विद्रोह की उत्तेजना के परिणाम स्वरूप हिन्दुओं और मुसलमानों में अपूर्व भ्रातृभाव पैदा हो गया। हिन्दू-मुस्लिम एकता नेताओं से लेकर सर्व-साधारण जनता तक राष्ट्रीय कार्यक्रम का महत्वपूर्ण अंग बन गई। सार्वजनिक उत्तेजना के वातावरण में हिन्दू-मुसलमानों के हाथ से और मुसलमान हिन्दुओं के हाथ से जल पीने लगे। सार्वजनिक प्रदर्शनों में हिन्दू-मुस्लिम एकता

1, Sir Valentine Chirol, "India" 1926 P. 207

का नारा सदा ही गूंजता रहता था। मसजिदों में हिन्दू नेताओं के व्याख्यान होने लगे"2

राष्ट्रीय-मुक्ति का यह आन्दोलन यदि आर्थिक व्यवस्था के प्रति आशंका के कारण १९१९ में ईश्वरीय प्रेरणा से स्थगित न कर दिया जाता तो ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध भारत का राष्ट्रीय मोर्चा हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की स्वतंत्रता की मांगों के रूप में बटा हुआ न होकर हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता की मांग की रूप में एक ही रहता और शायद देश के बटवारे का साम्राज्यवादी कुचक्र न चल पाता।

परन्तु गांधी जी दमन के विरोध स्वरूप क्रान्ति के प्रयत्न में ब्रिटिश सरकार द्वारा नियंत्रित पूंजीवादी और सामन्तवादी व्यवस्था के प्रति भय पैदा हो जाने की 'हिमालय जैसी भारी भूल' को पहचान चुके थे। क्रान्ति के भय से बचने के लिये गांधी जी ने आन्दोलन को स्थगित कर ब्रिटिश सरकार के सहयोग और वैधानिक समझौते द्वारा शासन का अधिकार पूंजीपति श्रेणी के हाथ में पाने की आयोजना को ही सत्य-अहिंसा (सम्पत्ति के अधिकारों) की रक्षा का मार्ग समझा। गांधी जी ब्रिटिश की सदभावना को 'मांटेगू-चेम्स फोर्ड' सुधारों के आश्वासन और रौलट-बिल के रूप में देख चुके थे। दूसरी ओर आन्दोलन के समय जनता की भावना को भी उन्होंने समझ लिया था। इन दोनों में से पूंजीवादी ब्रिटेन की सदभावना ही उन्हें अधिक भरोसे योग्य जान पड़ी।

गांधी जी की सत्य अहिंसा की रक्षा जनता की भावना की अपेक्षा ब्रिटिश व्यवस्था में ही अधिक सम्भव थी। पूंजीपति श्रेणी के शासन का अधिकार पाने के लिये जनता का सहयोग पाने के साथ-साथ उसे पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था के अनुशासन में रखना भी आवश्यक था। इसलिये देश में मुक्ति का आन्दोलन जागरित हो जाने और दमन तथा रक्तपात का दौरदौरा हो जाने पर भी गांधी जी ने दिसम्बर १९१९ में कांग्रेस और देश की जनता को राय दी:—"हमें ब्रिटेन की सदभावना और ईमानदारी पर विश्वास है।... हमारा कर्त्तव्य इन सुधारों की कड़ी आलोचना नहीं बल्कि शान्ति और सन्तोष-पूर्वक इन्हें सफल बनाना होना चाहिए।"*

---

2. India 1919.

* Young India, Dec. 13. 1919.

गांधी जी के सत्य-अहिंसा और सहयोग के इस उपदेश को जनता स्वीकार नहीं कर सकी। देश की जनता रौलट-बिल के विरुद्ध हुए आन्दोलन के समय सरकारी दमन के विरुद्ध जल रही थी। १९२० में कांग्रेस ने भी सुधारों के सम्बन्ध में अंग्रेजी सरकार से सहयोग के प्रस्ताव को बहुमत से ठुकरा दिया। १९२० का वर्ष कठिन आर्थिक संकट का समय था। तब पहली बार देश में अनाज रुपये का तीन-चार सेर बिका था। किसान जनता लगान देने में असमर्थ हो रही थी और मजदूरों ने जगह-जगह लगभग दो सौ हड़तालें कर अपना असन्तोष प्रकट किया था। ऐसी अवस्था में विदेशी सरकार से सहयोग की नीति पर जमे रहने से गांधी जी देश की जनता का नेतृत्व नहीं कर सकते थे। इसलिए गांधी जी कांग्रेस के नेता के रूप में जनता पर हुए दमन के प्रतिशोध और राष्ट्रीय मुक्ति के लिए 'शान्तिमय असहयोग आन्दोलन' का कार्यक्रम लेकर आगे बढ़े। गांधी जी को ब्रिटिश सरकार द्वारा पेश किये गये सुधारों को संतोष और शांति द्वारा सफल बनाने के अपने उपदेश भूल जाने पड़ने लगे।

सितम्बर १९२० में कांग्रेस ने जनता की भावना को अनुभव कर अपना उद्देश्य—"ब्रिटिश छत्र-छाया में औपनिवेशिक स्वतंत्रता" प्राप्त करने से बदल कर पूर्ण स्वाधीनता घोषित कर दिया परन्तु जनता को क्रान्ति की ओर न बढ़ने देने के लिये इस पूर्ण स्वतंत्रता की प्राप्ति का साधन या कार्यक्रम 'शांतिमय और वैधानिक उपाय' (Peaceful & Legitimate means) भी बहुत स्पष्ट रूप में रखा गया। इतना ही नहीं गांधी जी ने आन्दोलन की मुख्य शर्त "अहिंसा" (Nonviolance) निश्चित कर दी। अब की आन्दोलन की राजनैतिक मांगें पहले की अपेक्षा अधिक स्पष्ट थीं अर्थात्, पिछले आन्दोलन में सरकार द्वारा किये गये दमन का प्रतिशोध और पूर्ण स्वाधीनता की प्राप्ति।

'पूर्ण स्वाधीनता' का नारा तो जनता के सामने रखा गया परन्तु स्वाधीनता की रूप-रेखा जनता के सामने प्रकट करना या स्पष्ट कर देना आवश्यक नहीं समझा गया। स्वाधीनता की रूप रेखा की अस्पष्टता की ओर लोगों का ध्यान ही न गया हो सो बात नहीं। उस समय के आन्दोलन की चर्चा करते हुए पं० जवाहरलाल नेहरू ने इस अस्पष्टता के विषय में लिखा है: - "इस में सन्देह नहीं कि हमारे बहुत से नेता स्वराज्य का अर्थ ब्रिटेन के शासन से सर्वथा आजाद हो जाना नहीं समझते थे। गांधी जी इस विषय में सदा भोलेपन की अस्पष्टता बनाये रहते थे और इस विषय में स्पष्ट विचार को प्रोत्साहित भी

नहीं करते थे ।" पूर्ण स्वाधीनता का कांग्रेस का उद्देश्य उतना ही सारगर्भित और रहस्यपूर्ण रहा जैसा कि दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह के समय "भारत के राष्ट्रीय-सम्मान का प्रश्न" था ।

स्वराज्य की रूपरेखा स्पष्ट करने से पूंजीवादी और सामन्तवादी शोषण से जनता की मुक्ति का प्रश्न सामने आ जाना अनिवार्य होता और शायद भारत की राष्ट्रीय मुक्ति के संघर्ष का रूप रूस की १६१७ की समाजवादी क्रान्ति जैसा हो जाता । कांग्रेस के एक छत्र नेता के रूप में गांधी का निर्णय था कि स्वराज्य की रूप रेखा का निश्चय ईश्वरीय-प्रेरणा द्वारा होगा । उस समय केवल एक बात स्पष्ट थी कि जनता अहिंसात्मक रह कर, व्यवस्था को भंग किये बिना, अंग्रेज़ सरकार को अपनी राष्ट्रीय मांग स्वीकार कर लेने के लिए विवश कर दे । विरोधी विवश और परास्त भी हो जाय और अहिंसा भी बनी रहे, यह था सत्याग्रह का आध्यात्मिक दावा !

कुछ लोग गांधी जी को इस बात का श्रेय देते हैं कि राष्ट्रीय स्वतंत्रता के प्रश्न में श्रेणिगत दृष्टिकोण न आने दे कर गांधी जी ने स्वतंत्रता संग्राम के मोर्चे पर राष्ट्रीय एकता की रक्षा की । पहला प्रश्न विदेशी सरकार से देश के शासन का अधिकार लेना ही होना चाहिये था । श्रेणियों के हितों और स्वार्थों की बात बाद में ही तय होनी चाहिये थी । इस प्रकार का प्रचार केवल पूंजीपति श्रेणी के हित की रक्षा का ही उपाय था और इस प्रचार से ब्रिटिश-सरकार को ही लाभ हुआ ।

ब्रिटिश शासन की सब से अधिक विरोधी उस सरकार के सहयोग से जीविका चलाने और उस सरकार की आर्थिक व्यवस्था से लाभ उठाने वाली श्रेणी नहीं हो सकती थी । जो साधनहीन श्रेणी वास्तव में विदेशी शासन की लूट का शिकार होने के कारण उस सरकार की विरोधी थी, उस साधनहीन श्रेणी को श्रेणी एकता के नाम पर पूंजीपति श्रेणी की सहयोगी और समझौता-वादी नीति के नेतृत्व में दबाये रखने का परिणाम ब्रिटिश शासन को इस देश में चिरायु करना ही हुआ । परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए गांधी जी का साधनहीन श्रेणी के हित का बलिदान कर श्रेणी एकता और अहिंसा पर ज़ोर देने का अर्थ, आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन न आने देना ही रहा है । आन्दोलन की प्रगति और फिर उस के स्थगित कर दिये जाने के क्रम से यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है ।

इस राजनैतिक संघर्ष में कांग्रेस के पास विदेशी सरकार से लोहा लेने का मुख्य साधन असहयोग या हड़ताल का कार्यक्रम था । राजनैतिक असहयोग का अभिप्राय सरकार के सभी कामों से अपना सहयोग हटा कर उस की शासन व्यवस्था को असम्भव कर देना था । परन्तु कांग्रेस ने आंदोलन को कदम-कदम चलाने की आयोजना बनाई । सार्वजनिक असहयोग की बात को स्थगित रख कर आरम्भ में सीमित असहयोग के लिये तीन क्षेत्र चुने गये—विधान सभाएँ (Legislatures), अदालतें और स्कूल-कालिज । अर्थात् सम्पत्ति-सम्पन्न लोगों, वकीलों और विद्यार्थियों को, जो इस समय प्रायः सम्पन्न की सन्तान थे, इस आन्दोलन में भाग लेने के लिये पुकारा गया । अभिप्राय था कि आन्दोलन के मोर्चे पर वे ही लोग आयें जिन से समाज की पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था को आशंका न हो । सर्वसाधारण जनता को घर बैठ कर चर्खा कातने का ही उपदेश दिया गया । जिस से वे लोग आन्दोलन में सक्रिय भाग लेकर मोर्चे पर तो न आयें परन्तु विदेशी कपड़े की खपत को कम करके मोर्चे के पीछे रहते हुए भी विदेशी पूंजीपति श्रेणी पर दबाव डालने में सहायक हो सकें । इस दबाव का उपयोग कर सके केवल आगे बढ़ने वाली श्रेणी ।

मेहनत करने वाली साधनहीन श्रेणी के प्रति अपने अविश्वास और आशंका को गांधी जी ने आन्दोलन के आरम्भ में ही बहुत स्पष्ट कर दिया था । उन्हों ने न केवल निम्न-मध्यम वर्ग के लोगों और छोटे सरकारी नौकरों, पुलिस और फौज के सिपाहियों को मोर्चे पर नहीं पुकारा बल्कि उन्होंने चेतावनी दे दी कि—"अनेक मजदूर नेता समझते हैं कि राजनैतिक उद्देश्य से मजदूरों की हड़तालें उपयोगी हो सकती है । मेरी राय में इस कार्य के लिये मजदूरों की हड़तालों का उपयोग भारी भूल होगी ।"१ इसी प्रकार किसानों को भी आन्दोलन से दूर रखने के लिये उन्होंने चेतावनी देना आवश्यक समझा:—"हमारा यह इरादा बिलकुल नहीं कि असहयोग आन्दोलन में किसी भी अवसर पर जमीदारों का लगान बन्द कर दिया जाये ।" उन्होंने अपनी बात को और भी स्पष्ट कर दिया:—"किसानों को समझा देना चाहिए कि जमीदारों से किये गये अपने समझौते का उन्हें धर्म पूर्वक पालन करना चाहिए, चाहे वह समझौता

---

१ रिवाज 'Custom' के अनुसार चले आये समझौते में जमीदारों का बेगार पाना भी समझा जा सकता है ? ले०

कलमवन्द हो या रिवाज के अनुसार चला आया हो।" व्रिटिश-शासन और व्यवस्था से पीड़ित देश की इन दो सब से वड़ी श्रेणियों के सक्रिय विरोध से व्रिटिश शासन को वचाये रखने में गांधी जी का क्या प्रयोजन समझा जा सकता था ?

कांग्रेस द्वारा राष्ट्रीय-स्वतंत्रता की पुकार उठाने पर देश की जनता में विदेशी शासन के विरुद्ध विद्रोह की दुर्दमनीय लहर दौड़ गई थी। उस समय जनता की उग्र भावना और गांधी जी के अनिश्चित कदमों के वारे में कांग्रेस द्वारा स्वयं लिखाये गये इतिहास में ही यह स्वीकार किया गया है कि — "सामूहिक और सार्वजनिक असहयोग का लक्ष जनता को आकर्षित कर रहा था। परन्तु यह लक्ष कार्यरूप में कैसे आयेगा, यह वात गांधी जी ने कभी स्पष्ट नहीं की, शायद स्वयं उन के सामने भी स्पष्ट नहीं थी। यह लक्ष उन के पवित्र हृदय और आत्म दृष्टि के सम्मुख स्वयं ही शनै-शनै प्रकट होने वाला था.......।"*
गांधी जी के सामने असहयोग के लक्ष का मार्ग भले ही अस्पष्ट रहा हो, परन्तु इतना जरूर स्पष्ट था कि उन की दृष्टि में साधनहीन मेहनतकश जनता का आन्दोलन के मोर्चे पर आना पूंजीवादी व्यवस्था और व्रिटिश शासन के लिये भय का कारण है।

असहयोग आन्दोलन को समझौते द्वारा मांगें पूरी करने की सीमा में रखने और उसे सार्वजनिक रूप न लेने देने के गांधी जी के प्रयत्नों के वावजूद कांग्रेस का घोषित लक्ष ऐसा था कि जनता आन्दोलन में टूटी पड़ रही थी। विदेशी शासन के विरोध और राष्ट्रीय-मुक्ति की इच्छा को प्रकट करने का जो साहस जनता ने इस आन्दोलन से पाया वह निर्विवाद रूप से अभूतपूर्व था। जनता की यह भावना देश भर में अनेक रूपों में प्रकट हो रही थी। आसाम, वंगाल और पंजाव में भारी हड़तालें हो गईं वंगाल के मिदनापुर जिले में लगान वन्दी शुरू हो गई, दक्षिण में मोपला विद्रोह हो गया, पंजाव में वहुत वड़े परिमाण में अकाली आन्दोलन चल पड़ा। इन आन्दोलनों ने अनेक जगह साम्प्रदायिक रूप भी ले लिया परन्तु उस का कारण यह था कि कांग्रेस विदेशी शासन से मुक्ति की मांग करने के वाद सरकार से सार्वजनिक

---

* Official "History of the Indian National Congress" 1935, P. 376

संघर्ष के मोर्चे को टाले जा रही थी। कांग्रेस राजनैतिक संघर्ष को टालने और जनता को व्यवस्था के अनुशासन में बनाये रखने के लिए ब्रिटिश शासन से स्वतंत्रता की मांग को आध्यात्मिक अनुशासन का रूप देने का यत्न कर रही थी। इस का अनिवार्य परिणाम हुआ देश में साम्प्रदायिकता की प्रवृत्ति को उत्साह मिलना। देश के भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय ब्रिटिश शासन को अपने-अपने साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से अपना शत्रु समझकर अपनी-अपनी समस्या पृथक समझने लगे। बाद में इस भावना का परिणाम सार्वजनिक राजनैतिक आन्दोलन से अनेक सम्प्रदायों का फूट जाना भी हुआ।

असहयोग के लिये जनता में इतना उत्साह था कि गांधी जी ने सितम्बर १९२१ में यह घोषणा कर दी कि "संघर्ष समाप्त होने से पहले देश स्वतंत्र हो जायगा। यदि ३१ दिसम्बर, १९२१ तक स्वराज्य न हो गया तो वे अपना जीवन व्यर्थ समझेंगे।"* सरकार ने कांग्रेस के स्वयं सेवकों को गैरकानूनी करार दे दिया था परन्तु देश के बड़े-बड़े शहरों में उन का ही शासन दिखाई दे रहा था। दिसम्बर १९२१ में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन अहमदाबाद में हुआ। जनता सार्वजनिक और सामूहिक असहयोग और सामूहिक रूप से कानून भंग (mass civil disobedience) कर के ब्रिटिश शासन को समाप्त कर देने के लिये उतावली हो रही थी। देश के मजदूर और नौकरी पेशा लोग असहयोग के मोर्चे पर कूद पड़ने के लिए तड़प रहे थे। देश के सभी लोगों से किसान लगानबन्दी आरम्भ करने की मांग कर रहे थे। कुछ ही दिन पूर्व देश में संगठित हुई कम्युनिस्ट पार्टी ने देश की राजनैतिक स्थिति के विषय में अहमदाबाद कांग्रेस के अवसर पर 'यह घोषणा पत्र' प्रकाशित किया था:—

"इस समय देश की जनता क्रान्ति की बहुत गहरी भावना से व्याकुल है। यदि कांग्रेस इस क्रान्ति का नेतृत्व करना चाहती है तो इस का कार्यक्रम केवल अनियंत्रित उत्साह के प्रदर्शनों तक ही सीमित नहीं रखना चाहिए। कांग्रेस को चाहिए कि संगठित मजदूरों और किसान सभाओं की मांगों को अपने कार्यक्रम में सम्मिलित करे। यदि कांग्रेस इस मार्ग पर चलेगी तो देश

---

*"The Indian Struggle" Subhas Bose, P. 84.

की सम्पूर्ण जनता अपनी जीवन की माँग के लिए सचेत होकर अपनी सम्पूर्ण शक्ति से कांग्रेस को अजेय बना देगी।"*

सत्याग्रह-असहयोग युद्ध की अन्तिम तैयारी के रूप में युद्ध संचालन के सभी अधिकार गांधी जी के हाथ में देकर उन्हें एकछत्र नेता करार दे दिया गया। जब देश की जनता राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिये शत्रु से लोहा लेने के लिये आतुर हो रही थी और अंग्रेज सरकार का दिल दहल रहा था, तब कांग्रेस की ओर भी एक आदमी भयभीत था; वह थे—इस युद्ध के प्रधान सेनापति, आन्दोलन से एकछत्र नेता गांधी जी! उन्हें भय था क्योंकि मजदूर हड़तालें करके विदेशी-शासन और पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था को बिलकुल समाप्त कर देना चाहते थे, क्यों कि किसान लगानबन्दी कर के, अब तक शहरों में सीमित आन्दोलन को सुदूर गांवों में पहुँचा देना चाहते थे जिस का प्रभाव गांवों से भरती होनेवाली भारतीय-ब्रिटिश सेना पर अनिवार्य रूप से पड़ता। जनता आन्दोलन को सरकार से युद्ध का वास्तविक रूप दे देने के लिये अहिंसा (Nonviolence) की शर्त से छुट्टी की मांग कर रही थी।

वास्तविक संघर्ष से गांधी जी का भय प्रकट हुआ उस समय सब प्रसिद्ध जनतंत्रवादी नेता हसरत मोहानी ने अहमदाबाद कांग्रेस में 'स्वराज्य' की परिभाषा में 'विदेशी नियंत्रण से सभी प्रकार की मुक्ति की शर्त जोड़ने' का प्रस्ताव किया। गांधी जी ने इस प्रस्ताव पर खेद प्रकट कर इस का विरोध किया क्यों कि उन्हें इस में 'गैर जिम्मेवारी' की भावना दिखाई दे रही थी। सितम्बर १९२१ से दिसम्बर १९२१ तक स्वराज्य प्राप्ति की घोषणा और 'विदेशी शासन से पूर्ण मुक्ति' को 'गैर जिम्मेवारी' की बात समझने में क्या सम्बन्ध हो सकता है; यह बात केवल आध्यात्मिक दृष्टि से ही समझी जा सकती है, क्रियात्मक भौतिक दृष्टि से नहीं।

अहमदाबाद अधिवेशन के समय चारों ओर से उठती सार्वजनिक और सामूहिक असहयोग की मांग को भी गांधी जी और कांग्रेस ने स्वीकार नहीं किया। जनता की मांग के उत्तर में कांग्रेस ने निश्चय किया, "....जब जनता अहिंसा की उचित शिक्षा पा लेगी तब उचित सीमाओं का ध्यान रखते हुये,

---

*(Manifesto of Communist Party of India to the Ahmedabad National Congress, 1921.

निर्देश दिये जाने पर ही कानून-भंग आन्दोलन आरम्भ किया जा सकेगा।" चारों ओर से मांग होने पर भी मजदूरों की हड़तालों और लगानवन्दी के आन्दोलन को कांग्रेस ने अपने कार्यक्रम में स्थान नहीं दिया। परन्तु देश की जनता विदेशी-शासन की व्यवस्था पर चोट किए विना केवल शक्ति प्रदर्शन करके शासन का अधिकार अपने देश की पूंजीपति श्रेणी को दिला देने की पैंतरेबाजी के योग्य चतुर नहीं थी। वह अपने शोषण की व्यवस्था के बन्धनों को तोड़ कर मुक्ति चाहती थी।

देश में जगह-जगह लगान-बन्दी आन्दोलन शुरू होने लगा। कांग्रेस के सभी राजनैतिक नेताओं को सरकार ने जेलों में बन्द कर दिया। केवल गांधी जी बाहर थे; इसलिये नहीं कि सरकार को गांधी जी की आध्यात्मिक शक्ति से भय था बल्कि इसलिए कि गांधी जी सरकार को जनता की 'हिंसा' (क्रांति) से बचाये हुये थे। सार्वजनिक क्रान्ति को रोके रहने के लिए सरकार गांधी जी पर ही निर्भर कर रही थी। यह बात उस समय वाइसराय द्वारा लन्दन में सेक्रेटरी आफ स्टेट को भेजे गए तार से स्पष्ट है। उस तार का संक्षिप्त भाव यों है:—"........क्रिसमस के अवसर पर अहमदाबाद में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। बम्बई आदि स्थानों पर होने वाले दंगों से गांधी ने यह अनुभव कर लिया है कि सार्वजनिक और सामूहिक कानून-भंग आन्दोलन कितनी भयंकर चीज़ है और यह बात उन्होंने कांग्रेस में प्रकट भी की है। विरोधी नेताओं के आन्दोलन से अहिंसा की शर्त हटा देने के प्रस्ताव को भी कांग्रेस ने स्वीकार नहीं किया। कांग्रेस ने आन्दोलन की पूरी तैयारी हो जाने पर भी लगानबन्दी की बात नहीं उठाई........।"*

गांधी जी और कांग्रेस की आज्ञा के बिना ही जगह-जगह कानून-भंग का सत्याग्रह जारी हुआ और आन्दोलन का सरकार के लिये सबसे भयंकर कदम 'लगानबन्दी' भी उठाया जा रहा था। आन्दोलन को अपने नियंत्रण से बाहर जाता देखकर गांधी जी ने जनता को आश्वासन दिया कि सब जगह लगान-बन्दी रोक दी जाये, वे अपने नेतृत्व में बारदोली सार्वजनिक और सामूहिक कानून भंग आन्दोलन और लगान बन्दी आरम्भ करेंगे। उन्हें विश्वास था कि बारदोली

---

*"Telegraphic Correspondence regarding the Situation in India" Comd 1586; 1922.

की जनता ने उन की अहिंसा की शिक्षा उचित रूप से पा ली है या बारदोली के छोटे से ताल्लुके में वे लगानबन्दी को अपने आदर्श के अनुसार, व्यवस्था को चोट पहुंचाये बिना चला सकेंगे। इसी समय उत्तर प्रदेश के एक छोटे से गांव 'चौरी-चौरा' में पुलिस के दमन के विरुद्ध जनता ने विद्रोह कर थाने को जला कर पुलिस के बाइस सिपाहियों की हत्या कर दी। इस घटना से दुखी होकर गांधी जी ने १२ फरवरी १६२२ को देश भर में कानून भंग और सत्याग्रह आन्दोलन को स्थगित कर देने की आज्ञा दे दी। क्योंकि उन की दृष्टि में 'अहिंसा' (सम्पत्ति के अधिकारों की व्यवस्था की रक्षा) का महत्व 'स्वराज्य' (शोषण से जनता की मुक्ति) से अधिक था।

गांधी जी ने अहिंसा की रक्षा के लिये आन्दोलन को १२ फरवरी १६२२ को कैसी अवस्था में स्थगित किया, यह भी उस समय वाइसराय द्वारा लन्दन में सेक्रेटरी आफ स्टेट को, आन्दोलन स्थगित होने से तीन दिन पहले, ६ फरवरी को भेजे गये तार से स्पष्ट हो जाता है: —"शहरों में निम्न श्रेणियों (मजदूरों और छोटे नौकरी-पेशा लोगों) पर आन्दोलन का प्रभाव गहरा है। आसाम, युक्त प्रान्त, बिहार, उड़ीसा और बंगाल में किसान भी आन्दोलन के साथ हैं। पंजाब में अकाली आन्दोलन गांवों तक पहुँच गया है। मुसलमान लोग देश भर में बिगड़े बैठे हैं।.........भयंकर आशंका है।.........सरकार एक अभूतपूर्व अव्यवस्था, जैसी पहले कभी नहीं हुई, का सामना करने के लिये तैयार है परन्तु यह स्पष्ट कर देना उचित है कि परिस्थिति विकटरूप से चिन्ताजनक है।"[1]

क्रान्ति के लिये तैयार जनता से ब्रिटिश-शासन की रक्षा गांधी जी ने ही की, यह बात उस समय के बम्बई के गवर्नर लार्ड लायड ने मि० ड्यू पियर्सन से अपनी मुलाकात में स्पष्ट कहा था: —".........उस ने हमें भयभीत कर दिया! उस के कार्यक्रम से हमारी जेलें भर गईं।.........आप जनता को जेलों में कहाँ तक बन्द करते जा सकते हैं? आप ३११,०००,००० आदमियों को जेल में नहीं रख सकते। यदि आन्दोलन का अगला कदम उठा कर और लगान-बन्दी शुरू कर दी जाती, तो भगवान ही जानता है कि क्या होता!

---

(1) Viceroy to Secretary of State for India, Feb, 9, 1922. "Telegraphic Correspondence regarding the Situation in India" Comd. 1586. 1922.

"संसार के इतिहास में गांधी जी ने सबसे बड़ा परीक्षण किया है, और इस को कामयाबी में बाल भर का ही अन्तर रह गया था। जनता की भावनाओं पर नियंत्रण रखना उन के लिये भी सम्भव न रहा। जनता क्रान्ति पर उतारू हो गई थी परन्तु गांधी ने अपना कार्यक्रम स्थगित कर दिया। फिर क्या हुआ; तुम जानते ही हो। हमने उन्हें जेल में बन्द कर दिया।"[१]

क्रान्ति के लिये आतुर जनता को रोकना वास्तव में ही कठिन था। इस काम का श्रेय है गांधी जी को। जब आन्दोलन स्थगित हो गया तो सरकार ने अपनी प्रतिष्ठा जमाने के लिये गांधी जी को भी जेल भेज दिया। आन्दोलन स्थगित किया गया था देश या व्यवस्था को हिंसा से बचाने के लिये। हिंसा से गांधी जी का अभिप्राय क्या था यह आन्दोलन को स्थगित करने की आज्ञा देने वाले कांग्रेस के प्रस्ताव से स्पष्ट है। इस प्रस्ताव की धारा ६ में कांग्रेस-कमेटियों और कांग्रेस-कार्यकर्ताओं को विशेष आदेश है:—"……किसानों को समझा दिया जाय कि ज़मीन्दारों का लगान न देना कांग्रेस के प्रस्ताव और देशहित के विरुद्ध है।" धारा ७ में जमीन्दारों को विश्वास दिलाया गया है कि:—"……जमीन्दारों के न्यायपूर्ण अधिकारों पर आक्रमण करना कांग्रेस के कार्यक्रम का अंग नहीं है। यदि कहीं किसानों को अन्याय की शिकायत भी है तो उस का समाधान आपसी समझौते से ही होना चाहिये।"[2] कांग्रेस का यह प्रस्ताव गांधीवादी अहिंसा के सिद्धान्त में साधनवान श्रेणी के हित की रक्षा के उद्देश्य को सर्वथा स्पष्ट कर देता है।

परन्तु जनता क्या चाहती थी, यह इसी बात से स्पष्ट है कि जब कांग्रेस ने १९२१ में सरकार से असहयोग का कार्यक्रम अपनाया कांग्रेस के सदस्यों की संख्या एक करोड़ तक पहुँच गई और जब गांधी जी ने अहिंसा की रक्षा के लिए कांग्रेस का कार्यक्रम चर्खा कातना बना दिया तो १९२४ में कांग्रेस के सदस्यों की संख्या केवल बीस हजार अर्थात् प्रति पांच सौ में से एक ही रह गई। उस समय दुखी हो कर गांधी जी ने कहा था—"जनता केवल सरकार से लड़ने के लिये ही हमें नेता मानती है।"

---

(1) "New Republic", C. F. Andrews, April 3, 1939.

(2) Resolution of Congress Working Committee. Feb. 12, 1922.

गांधी जी का यह कहना ठीक ही था, जनता अपने शोषण की व्यवस्था की रक्षा के लिये गांधी जी के पीछे नहीं चलना चाहती थी। और गांधी जी जनता की शक्ति का प्रयोग करना चाहते थे देश की पूंजीपति श्रेणी के हित में ब्रिटिश-साम्राज्यशाही से समझौता कर सकने के लिये। ऐसा समझौता जिस से देश की शोषित श्रेणी के नियंत्रण में पैदावार की साधन बनी रहे और देश की पूँजीपति श्रेणी ब्रिटिश शोपित श्रेणी के समान ही शोषण के अधिकार पा सके। गांधीवाद की सफलता इसी वात में रही कि जनता कांग्रेस के पीछे चल कर अपने शोषण की व्यवस्था की रक्षा करती रही और उस ने अपने देश की पूंजीपति श्रेणी के लिये शासन का अधिकार ले दिया। कांग्रेस की इस सफलता का अर्थ साधनहीन किसान-मज़दूर जनता के प्रति विश्वासघात ही समझा जायगा।

× × ×

१९२२ में विदेशी शासन के विरुद्ध मुक्ति के लिये क्रान्ति के मोर्चे पर से जनता को पीछे हटाने के परिणाम में देश में राजनैतिक निराशा छा गई। गांधी जी चर्खा-संघ के रूप में अपना अहिंसात्मक आध्यात्मिक संगठन फैलाने में लग गये। दूसरे राजनैतिक नेता स्वराज्य पार्टी वना कर कौंसिलों में जा बैठे। परन्तु जनता शांत और सन्तुष्ट नहीं हो गई। विशेषतः मज़दूर और किसान वर्ग में शोषण से आत्म रक्षा के लिये जागृत और भावना वढ़ती ही जा रही थी।

सरकार इस ओर से बेपरवाह नहीं थी। साधनहीन श्रेणी में वढ़ते विद्रोह के संगठन की रोक थाम के लिये सरकार ने कानपुर में १९२४ में मज़दूर नेताओं को गिरफ्तार कर के एक कम्युनिस्ट-षड़यंत्र की जांच आरम्भ की। १९२६-१९२७ में मज़दूरों तथा किसानों के और भी संगठन साधनहीन श्रेणी की माँगों को लेकर प्रकाश में आने लगे। १९२८ में वम्वई में 'लाल झण्डा मज़दूर सभा' वन गई और मज़दूरों की हड़तालों का दौर-दौरा शुरू हो गया।

कांग्रेस को सो गया देख कर देश के सभी प्रान्तों में नौजवान-सभायें विदेशी शासन विरोधी आन्दोलन को लेकर आगे वढ़ने लगीं। देश के व्यापारी वर्ग को सन्तुष्ट रखने के लिये ब्रिटिश सरकार ने १९२४ में कुछ सुविधायें व्यापारियों को दी थीं। परन्तु १९२६ में सरकार ने पौंड-पावने का दर वदल कर और ब्रिटिश व्यापार पर लगाये कर हटाकर उन सव सुविधाओं को रद्द

कर दिया। इस लिए देश की पूंजीपति श्रेणी भी बेचैन हो गयी। सरकार ने असंतोष की इस बाढ़ को अनुभव किया और सुधारों की एक नयी योजना आरम्भ करने के लिये 'साइमन-कमीशन' भारत में भेजने की घोषणा कर दी।

कांग्रेस जनता में बढ़ते असंतोष और जनता को अपने नेतृत्व से निकलता अनुभव कर रही थी। जनता को अपने नेतृत्व में रखने के लिए १९२७ में कांग्रेस ने "पूर्ण स्वराज्य" का प्रस्ताव पास कर दिया और 'अन्तरराष्ट्रीय साम्राज्य-विरोधी संघ' (International League Against Imperialism) से भी अपना सम्बन्ध जोड़ लिया। जनता में बढ़ती वामपक्ष की भावना को सन्तुष्ट करने के लिये युवकों के नेता पं० जवाहरलाल नेहरू और श्री सुभाष बोस को कांग्रेस के जनरल सेक्रेटरी भी नियुक्त कर दिया गया। दूसरी ओर कांग्रेस ने एक 'अखिल भारतीय राजनैतिक दल सम्मेलन' कर के संयुक्त मोर्चा बनाने का भी प्रस्ताव पास कर लिया। उस के परिणाम में पं० मोतीलाल नेहरू ने 'उदार-दल' के नेताओं का सहयोग पाने के लिए 'नेहरू कमेटी रिपोर्ट' के रूप में "ब्रिटिश साम्राज्य की छत्रछाया में उत्तरदायी शासन" की मांग का एक मसौदा तैयार कर लिया।

१९२७ में कांग्रेस 'पूर्ण स्वराज्य' को अपना लक्ष स्वीकार कर चुकी थी। यह मांग देश और कांग्रेस के वामपक्ष की थी। इस कार्यक्रम पर चलने से सरकार से संघर्ष अनिवार्य था। १९२८ दिसम्बर, कलकत्ता में कांग्रेस के अधिवेशन में 'नेहरू कमेटी रिपोर्ट' का ब्रिटिश छत्रछाया में उत्तरदायित्व शासन को फिर से ध्येय स्वीकार करने का प्रस्ताव रखा गया और इस के समर्थक थे गांधी जी। जनता पीछे लौटने के लिये तैयार नहीं थी। इसलिये गांधी जी ने इस प्रस्ताव के साथ यह भी शर्त जोड़ दी कि यदि सरकार १९२९ के अन्त तक यह मांग पूरी नहीं कर देती तो कांग्रेस सार्वजनिक असहयोग और कानून-भंग के सत्याग्रह का आन्दोलन आरम्भ कर देगी। प्रस्ताव में यह भी स्पष्ट कर दिया गया कि इस बार असहयोग और कानून-भंग सत्याग्रह लगानबन्दी से ही आरम्भ किया जायगा।

गांधी द्वारा जोड़ी गयी शर्त से स्पष्ट है कि उन का वास्तविक लक्ष 'साम्राज्यवादी छत्र-छाया में उत्तरदायी शासन' ही था। कांग्रेस के यों पीछे कदम हटाने से जनता बहुत असन्तुष्ट थी। अधिवेशन के समय अपना असन्तोष

प्रकट करने के लिये पचास हज़ार मज़दूरों ने कांग्रेस पण्डाल के सामने आकर कांग्रेस की नीति के विरोध में प्रदर्शन किया। कांग्रेस ने आन्दोलन आरम्भ करने से पूर्व सरकार को जो एक वर्ष का समय दिया उस का पूरा लाभ सरकार ने उठाया। सरकार जानती थी उन के शासन को वास्तव में किस से भय है? उन्होंने मार्च १९२९ में ही देश भर से मज़दूर नेताओं को गिरफ्तार कर के मेरठ में उन पर एक विद्रोह के षड्यंत्र का मामला शुरू कर दिया।

कांग्रेस की चुनौती का एक और भी वर्ष बीत गया। १९२९ के अन्त में लाहौर अधिवेशन में फिर से 'पूर्ण-स्वराज' का प्रस्ताव पं० नेहरू के सभापतित्व में पास कर लिया गया। भारत की स्वतंत्रता भी घोषित कर दी गई परन्तु जब कलकत्ता अधिवेशन के अनुसार असहयोग आन्दोलन आरम्भ करने का समय आया तो गांधीजी ने फिर एक पत्र में ग्यारह शर्तें वायसराय को लिख भेजीं कि यदि सरकार इन शर्तों को ही मान ले तो भी जनता को आन्दोलन से रोक लिया जाय। सरकार आन्दोलन के दमन के लिये तैयार थी। अपनी शक्ति के अहंकार में उस ने गांधी जी की ग्यारह शर्तों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया।

गांधी जी दुविधा में थे। सरकार किसी प्रकार झुक कर अपनी प्रतिष्ठा में कमी सहन करना नहीं चाहती थी। कांग्रेस यदि आन्दोलन आरम्भ करती है तो उस के हिंसात्मक (क्रान्तिकारी) हो जाने की पूरी आशंका थी; यदि कांग्रेस आन्दोलन आरम्भ नहीं करती तो जनता का नेतृत्व ऐसे पक्ष के हाथ चला जाता जो अहिंसा के नाम पर विदेशी व्यवस्था को बनाये रखने के लिये तैयार नहीं था। इन परिस्थितियों में गांधी जी देश के मजदूर किसान दलों के साथ किसी प्रकार का सहयोग न कर ब्रिटिश व्यवसाय से ही समझौता करने में कांग्रेस का कल्याण समझते थे। इस अवस्था में गांधी जी ने वायसराय को जो पत्र लिखा वह उन की राजनीति और लक्ष को बहुत स्पष्ट कर देता है। यह पत्र था: –

"देश में हिंसात्मक दल बढ़ता जा रहा है और इस दल का प्रभाव भी अनुभव हो रहा है······। मेरा उद्देश्य है अहिंसा की रक्षा करना। इस उद्देश्य से मैं सरकार की संगठित हिंसा का सामना करूँगा और हिंसात्मक दल के

बढ़ते हुए प्रभाव का भी। यदि मैं निष्क्रिय रहता हूँ तो दोनों प्रकार की हिंसा को प्रोत्साहन मिलता है।"*

गांधी जी का यह पत्र वाइसराय को इस बात का सुझाव था कि देश में मौजूद व्यवस्था के शत्रु हिंसात्मक आन्दोलन के विरुद्ध कांग्रेस और ब्रिटिश सरकार का सहयोग परस्पर हितकर होगा। परन्तु सरकार अपनी गद्दी से झुकने के लिये तैयार नहीं थी। जनता पर अपना नेतृत्व बनाये रखने के लिए आन्दोलन आरम्भ करना कांग्रेस के लिये अनिवार्य हो गया। कलकत्ता अधिवेशन के प्रस्ताव के अनुसार यह आन्दोलन सार्वजनिक असहयोग और लगान वन्दी से आरम्भ होना चाहिए था, या० श्री बोस के प्रस्ताव के अनुसार कांग्रेस को विदेशी सरकार के मुकाबिले अपनी सरकार बना कर शासन शक्ति अपने हाथ में लेने का कार्यक्रम शुरू करना चाहिए था। परन्तु ऐसे सभी कार्यक्रमों का अनिवार्य परिणाम देश में व्यवस्था की क्रान्ति हो जाता। ऐसे अवसर पर गांधी जी ने अहिंसा (व्यवस्था) की रक्षा करते हुए निरर्थक सरकार-विरोधी आन्दोलन में जनता को उलझा देने का अद्भुत कार्यक्रम ढूंढ निकाला; जिस में जनता की शक्ति का बुखार भी उतर जाय और व्यवस्था पर भी चोट न आये। यह थी सूझ 'नमक कानून भंग' के आन्दोलन की। नमक कानून के अत्याचार के कारण न तो जनता भूखी मर रही थी, न नमक के लिए हाय-हाय कर रही थी। कांग्रेसी राज में नमक, कर हट जाने के बाद नमक पहले की अपेक्षा कठिनाई से ही मिल रहा है। और कई गुणा मंहगा भी। नमक कानून का तोड़ना सरकार पर चोट नहीं जनता की शक्ति का अपव्यय मात्र थी। अलबत्ता इस आन्दोलन ने सरकार विरोधी भावना को बढ़ाने में जरूर सहायता दी।

गांधी जी ने अहिंसा की रक्षा के लिये लगानबन्दी न कर नमक कानून भंग करने का आन्दोलन चलाया। परन्तु जनता नमक कानून को सरकार के प्रति विरोध, घृणा और प्रतिहिंसा की भावना के कारण ही तोड़ रही थी। नमक-कानून तोड़ कर जो नमक बनाया जाता था वह लाभ की चीज नहीं केवल सरकार को चिढ़ाने के प्रयोजन से अपनी शक्ति का अपव्यय था। जनता ने जब नमक-कानून तोड़ने के रूप में सरकार का विरोध शुरू किया तो वह और भी कई तरह से विरोध करने लगी। सरकार पुलिस और सेना की सहायता

---

* Gandhi,s Letter to Viceroy, March 2 1930 R. Palme Dutt. India To Day. 1946. P. 340.

से इस आन्दोलन का दमन कर रही थी। इस वर्ष के आन्दोलन के पेशावर कांड से गांधीवादी नीति के अहिंसा सम्बन्धी दांव-पेच के प्रयोजन की झलक ठीक-ठीक मिल जाती है।

इस आन्दोलन में पेशावर की जनता के कानून-भंग और विद्रोह प्रदर्शन का जब अंग्रेजी सरकार पुलिस की शक्ति से दमन न कर सकी तो सरकार ने पेशावर की अधिकांश मुस्लिम जनता पर दमन करने के लिये नं० २ बैटेलियन से १८ वीं रायल-गढ़वाल-राइफल की दो पल्टनों को शहर में भेजा। यह पल्टन पहाड़ी हिन्दू सिपाहियों की थी। पल्टनों को मुस्लिम जनता पर गोली चलाने की आज्ञा दी गई। गढ़वाली पल्टन ने निहत्थी जनता पर गोली चलाने से इनकार कर दिया। कुछ सिपाहियों ने अपनी बन्दूकें जनता को दे दीं। इस पल्टन को शहर से हटा लिया गया। छावनी में जाकर इन सिपाहियों ने विद्रोह का प्रदर्शन नहीं किया, बल्कि सत्याग्रहियों की तरह आत्म-समर्पण कर गिरफ्तार हो गये। इस घटना के परिणाम में २५ अप्रैल से ४ मई तक पेशावर में ब्रिटिश राज गायब हो गया।

यदि कांग्रेस इन सिपाहियों के व्यवहार को दूसरे सिपाहियों के लिए अनुकरणीय बताती तो यह घटना देश में एक सफल क्रान्ति कर ब्रिटिश सरकार की जड़ें हिला देतीं। परन्तु इस घटना ने गांधी जी और कांग्रेस को उत्साहित नहीं, भयभीत ही किया। कांग्रेस के कार्यक्रम की दृष्टि से इन सिपाहियों के व्यवहार की मीमांसा की जाय तो हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि इन सिपाहियों ने हिन्दू-मुस्लिम एकता का अनुकरणीय उदाहरण पेश किया, अपने ऊपर आपत्ति की भी परवाह न कर रक्तपात से दूर रह कर अहिंसा को निभाया, विनय पूर्वक सरकार की आज्ञा भंग कर अपने आप को बिना विरोध के गिरफ्तार भी करा दिया। गांधी जी और कांग्रेस के सिद्धान्तों के अनुसार यह लोग देश की प्रशंसा के पात्र तथा आदर्श सत्याग्रही थे; परन्तु गांधी जी ने इन की कठोर निन्दा की।

गांधी जी ने इस विषय पर वक्तव्य दिया:—"यदि गोली चलाने की आज्ञा मिलने पर कोई सिपाही गोली चलाने से इनकार करता है तो वह अपनी प्रतिज्ञा भंग करता है। वह प्रतिज्ञा-भंग के दोष का अपराधी है।"* गांधी जी के इस

* R. Palme Dutt, India To day, 1949. p. 343

वक्तव्य का अर्थ भारतीय सेना ने यही समझा कि देश को स्वतंत्रता के संघर्ष में सैनिकों का सहयोग कांग्रेस को स्वीकार नहीं; देश से उन का कोई सम्बन्ध नहीं समझा जाता।

गांधी जी द्वारा इन सिपाहियों की निन्दा अहिंसा के प्रति गांधीवाद की श्रद्धा की वास्तविकता को प्रकट कर देती है। जहां तक इन सिपाहियों के प्रतिज्ञा-भंग करने का प्रश्न है, वैधानिक-सभाओं के मेम्बरों और वकीलों को असहयोग करने के लिये पुकारना क्या उन लोगों की राजभक्ति की प्रतिज्ञा भंग करने के लिये पुकारना नहीं था? वास्तव में गांधी जी को भय था कि गढ़वाली सिपाहियों के व्यवहार से प्रकट होने वाली हिन्दू-मुस्लिम एकता और राजद्रोह, व्यवस्था को क्रान्ति द्वारा पलटने का आधार बन जायेंगे।

कांग्रेस का इतिहास इस बात का साक्षी है कि यह आन्दोलन आरम्भ करते समय गांधी जी 'राजद्रोह' को अपना धर्म घोषित कर चुके थे। गांधी जी का 'राजद्रोह' की घोषणा करना धर्म हो सकता था परन्तु सिपाहियों का स्वामी की हिंसा, करने की आज्ञा न मानना भी पाप हो गया। गांधीवाद की नीति के अनुसार सिपाही, नौकर और मजदूर का एक ही धर्म है:—मालिक की आज्ञा का पालन, इस श्रेणी को अपना धर्म स्वयं निश्चय करने का अधिकार नहीं। इन सिपाहियों की निन्दा की जाने से संसार के अहिंसावादी लोग चकरा गए। गांधी जी के 'राउण्ड-टेबल' कान्फ्रेंस में लन्दन जाने पर फ्रेंच पत्रकार चार्ल्स पेत्राश ने उन से इस विषय में फिर प्रश्न किया और गांधी जी ने इन सिपाहियों की निन्दा करने का कारण यों स्पष्ट किया:—

"......मैं सरकारी अफसरों और सिपाहियों को आज्ञा भंग करने के लिये नहीं कह सकता। क्यों कि जब शक्ति मेरे हाथ में आयगी, मुझे भी इन्हीं सरकारी नौकरों और इन्हीं सिपाहियों से काम लेना है। यदि मैं उन्हें आज्ञा भंग करना सिखाता हूँ तो मुझे भी यह भय होना चाहिये कि शक्ति मेरे हाथ में होने के समय भी वे ऐसा ही करेंगे।" गांधी जी का यह वक्तव्य स्पष्ट कर देता है कि उन की कल्पना में स्वराज्य का क्या आदर्श और रूप था। अहिंसा के प्रति गांधीवाद की भक्ति जीवन के दर्शन के रूप में नहीं बल्कि एक राजनैतिक शस्त्र के ही रूप में थी। आदर्श रूप में अहिंसा से उन का अभिप्राय शस्त्र प्रयोग न करना नहीं बल्कि पूंजीवादी व्यवस्था की रक्षा ही रहा है। भारतीय प्रजा के शासन के लिये वे सेना और पुलिस को आवश्यक समझते थे। प्रेम

से हृदय परिवर्तन का उपाय और नीति केवल ब्रिटिश और भारतीय पूंजीपति श्रेणी के आपसी झगड़े को मिटाने के लिये था।

सन १९३० में गांधी जी जब तक जेल से बाहर रहे, वे इस नमक-सत्याग्रह आन्दोलन को नमक की पुड़िया में समेटे रहे। परन्तु मई मास में उन के जेल चले जाने पर आन्दोलन ने व्यापक रूप ले लिया। लगभग साठ हजार व्यक्ति जेलों में पहुँच गये। आन्दोलन की व्यापकता के कारण जनता को नमक की कठिनाई नहीं थी बल्कि जनता की विदेशी शासन के प्रति घृणा ही थी। इस समय तक सरकार कांग्रेस-आन्दोलन के कार्यक्रम का अनुभव पा चुकी थी और १९२२ की अपेक्षा आन्दोलन को दबाने के लिये अधिक तैयार थी। परन्तु कोई भी शासन प्रजा के सहयोग के बिना चल नहीं सकता। सरकार के पांव फिर डगमगा रहे थे। देश में मौजूद ब्रिटिश व्यापारी श्रेणी भी शीघ्र ही कांग्रेस से समझौते की मांग कर रही थी। लंन्दन के समाचार पत्र 'स्पेक्टेटर' में ५ जुलाई १९३१ के अंक में बम्बई से एक अंग्रेज यात्री ने लिखा था—"वहाँ मजदूरों के प्रदर्शनों का यह हाल है कि यदि पुलिस और फौज उन का मुकाबिला करने के लिये न हो तो वे एक ही दिन में शहर पर कब्जा कर लें।" शोलापुर के मजदूरों ने तो नगर पर अपना शासन स्थापित ही कर लिया था जो पूरे सात दिन उन के हाथ में रहा। इतने समय में किसी प्रकार की लूट-पाट या चोरी की कोई भी घटनायें वहाँ नहीं हुईं। क्या यह मजदूरों की हिंसापरक प्रवृत्ति का उदाहरण माना जायगा ?

कांग्रेस के नेता इन मजदूरों को लगातार आन्दोलन से दूर रहने के लिये समझा रहे थे। मजदूरों के प्रदर्शनों में तिरंगे-झण्डों की अपेक्षा लाल झण्डों की अधिकता रहती थी। इस समय यदि मजदूरों को दबा कर रखने वाले भारतीय सैनिकों के सामने गढ़वाली-पल्टन की देशभक्ति और अहिंसा का उदाहरण पेश कर उन्हें देश की स्वतंत्रता के संघर्ष में सम्मिलित होने के लिये पुकारा जाता तो क्या परिणाम होता ? इस की कल्पना करना कठिन नहीं है। उस समय आन्दोलन को रोक कर ब्रिटिश शासन की रक्षा न करने से देश घनिष्ठ हिन्दू-मुस्लिम एकता की अवस्था में स्वतंत्र होता और दूसरे महायुद्ध से भारत के जर्जरित और शोषित होने की अवस्था भी न आती। इतने और वर्षों तक ब्रिटिश शासन की गुलामी के लिये भारत की जनता कांग्रेस की गांधीवादी नीति के प्रति ही कृतज्ञ रहेगी।

जेल में पहुँच कर गांधी जी जनता को शांत रहने के सन्देश और फिर गांधी जी के 'राउण्ड-टेबल' कानफ्रेंस में भाग लेने के लिये तैयार हो जाने से आन्दोलन स्थगित हो गया। कुछ मास पूर्व १९३० में गांधी जी ने इसी कानफ्रेंस में भाग लेने से इनकार कर दिया था और आन्दोलन आरम्भ करते समय घोषणा की थी—"अब तक मुझे दरख़ास्त देने, डेपुटेशन भेजने और मित्रतापूर्ण पत्र व्यवहार में विश्वास था परन्तु अब वह सब मिट गया है "gone to dogs"। मैं समझ गया हूँ कि सरकार इन चीजों से नहीं समझ सकती। राजद्रोह अब मेरा धर्म हो गया है। हमारा यह धार्मिक कर्त्तव्य हो गया कि हम इस सरकार के अभिशाप this curse Government को मिटा दें।"* परन्तु सिपाहियों और मजदूरों को यह अधिकार नहीं था कि वे भी राजद्रोह अपना धर्म समझें; शायद इसलिये कि वे ईश्वर की प्रेरणा नहीं पा सकते। लेकिन अपने नेता से राजद्रोह के धर्म की घोषणा सुन कर अपने निशस्त्र भाइयों पर गोली चलाने की आज्ञा को अस्वीकार करने वाले सिपाहियों की निन्दा को उन के प्रति धोखा या विश्वासघात के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकेगा ?

'सरकार के अभिशाप' को समाप्त करने के लिये राजद्रोह' का आन्दोलन चला कर गांधी जी ने देखी बम्बई में मजदूरों की शक्ति, शोलापुर में मजदूरों का शहर पर अपना शासन कायम कर लेना, उत्तर प्रदेश में लगानबन्दी की मांग और सिपाहियों में भी सरकार के प्रति विद्रोह की भावना; पूर्ण क्रान्ति के सभी साधन ! आन्दोलन को इस रूप और रास्ते जाते देख गांधी जी का विश्वास मित्रतापूर्ण बातचीत द्वारा हृदय-परिवर्त्तन की ओर लौट आया। 'राउण्ड-टेबल' कानफ्रेंस में आपने ब्रिटिश सरकार के सामने पुनः प्रतिज्ञा की:— "हमें ब्रिटेन के हृदय में भारत (या भारतीय पूंजीपतियों) के लिये प्रेम उत्पन्न करना है। यदि आप समझते हैं कि हमें इस कार्य में सौ वर्ष लग जायेंगे तो कांग्रेस सौ वर्ष तक अग्नि परीक्षा में तपती रहेगी।"[1]

गांधी जी की १९३० की राजद्रोह को धर्म समझने की घोषणा और 'राउण्ड टेबल कानफ्रेंस' के वक्तव्यों में शाश्वत सत्य का क्या सम्बन्ध है इसे गांधीवाद ही समझ सकता है। भारत की जनता के सम्मुख 'राजद्रोह के' धर्म की

---

* 'कांग्रेस इतिहास', पट्टाभि सीतारमैय्या, पृ० ७५१

१ 'कांग्रेस का इतिहास', पट्टाभि सीतारमैय्या, पृ० ८३१

घोषणा और इंगलैण्ड की पूंजीपति श्रेणी के सम्मुख प्रेम की प्रतिज्ञाओं में सत्य का क्या सम्बन्ध है; यह केवल ईश्वर प्रेरणा द्वारा ही जाना जा सकता है। 'राउण्ड-टेवल' कानफ्रेंस में गांधी जी के सलाहकार के रूप में प्रसिद्ध पूंजीपति विड़ला भी साथ थे। विड़ला बड़े गर्व से लिखते हैं कि उन्होंने गांधी जी को डांट कर समझा दिया था कि व्यापारी मामलों में उन की राय के बिना मुंह न खोलें। सम्भव है सत्य और अहिंसा के अनेक रहस्यों को समझने गांधी जी को ईश्वर की प्रेरणा विड़ला के मस्तिष्क द्वारा ही मिल सकती हो।[२]

अंग्रेज सरकार को अपनी मित्रता और उन के न्याय के प्रति विश्वास दिलाने पर भी गांधी जी को इंगलैण्ड में इतनी ही सफलता मिली कि उन्हें वहीं यह कह देना पड़ा कि भारत लौट कर उन्हें फिर आन्दोलन जारी करना पड़ेगा।[३] परन्तु भारत लौट कर गांधी जी ने लार्ड विलिंगडन को तार दे कर उन से समझौते के लिये मुलाकात की भी इच्छा प्रकट की। सरकार समझौता नहीं चाहती थी, वह चाहती थी कांग्रेस का पूर्ण दमन। वाइसराय ने गांधी जी से मुलाकात नहीं की वल्कि आर्डिनेंस जारी करके गांधी जी सहित कांग्रेस के सभी नेताओं को जेल भेज दिया गया।

इतने दिन आन्दोलन स्थगित रहने का लाभ सरकार ने ही उठाया कांग्रेस ने नहीं। आन्दोलन फिर आरम्भ हुआ परन्तु गांधी जी के जेल के भीतर रहने के कारण 'सत्य-अहिंसा' के वन्धन पूरी तरह लागू न हो सके। अब की वार जनता के आग्रह के कारण लगान वन्दी के आन्दोलन को लगान स्थगित करने के रूप में जारी करने की इजाजत कांग्रेस को देनी ही पड़ी। यह भी शायद इसीलिये सम्भव हो सका कि गांधी जी जेल में होने के कारण लगान-वन्दी का विरोध नहीं कर सके। सरकार की सव तैयारियों के वावजूद आन्दोलन ने उग्र रूप धारण कर लिया। नव्वे हजार व्यक्ति जेलों में पहुँच गये। आन्दोलन की ऐसी प्रगति देख कर जेल में गांधी जी का हृदय धड़क रहा था।

गांधी जी ने जेल में पहले अछूतों की समस्या पर और फिर अपने साथियों के हृदय की शुद्धि के लिये अनशन कर दिया। अनशन की अवस्था में सरकार ने उन्हें रिहा कर दिया। आन्दोलन के कारण गांवों की जनता में विद्रोह

---

२ 'डायरी के कुछ पन्ने', श्री० घनश्यामदास विड़ला, पृ० ६०

३ महात्मा गांधी की चर्चिल के पुत्र से मुलाकात डायरी के पन्ने, पृ०५०

फैलता देखकर गांधी जी ने कांग्रेस को आन्दोलन और सरकार को दमन स्थगित करने की सलाह दी। कांग्रेस ने तो आन्दोलन स्थगित कर दिया परन्तु सरकार ने गांधी जी की प्रार्थना ठुकरा दी। गांधी जी बहुत दुविधा में थे कि क्रान्ति की ओर बढ़ता आन्दोलन भी स्थगित हो जाये और कांग्रेस की प्रतिष्ठा भी बनी रहे। इस का उपाय उन्होंने यह निकाला कि सब कांग्रेस कमेटियों और युद्ध कमेटियों को बरखास्त कर दिया जाय और व्यक्तिगत सत्याग्रह आरम्भ हो। कांग्रेस का संगठन ही न रहा तो उस की प्रतिष्ठा का प्रश्न भी न रहा। गांधी जी द्वारा कांग्रेस के संगठन को ठीक ऐसे समय भंग कर देना जब कि वह ब्रिटिश सरकार को जड़ से उखाड़ देने के अथवा भूमि के कर की सामन्त-वादी प्रथा की जड़ों पर चोट कर रहा था, एक अत्यन्त रहस्य पूर्ण ऐतिहासिक तथ्य है। ब्रिटिश सरकार की इस से अधिक सहायता और क्या हो सकती थी? व्यक्तिगत सत्याग्रह का पूर्ण नेतृत्व उन्होंने रखा अपने हाथ में।

व्यक्तिगत सत्याग्रह के सिद्धांत ने १९४१-४२ में और भी अद्भुत पैंतरे दिखाये। गांधी जी ने सब सत्याग्रहियों को कानून-भंग से रोक कर स्वयं सत्याग्रह आरम्भ किया और जनता के सामने सत्याग्रह का उदाहरण यह रखा कि साबरमती-आश्रम की भूमि पर कर न देने के लिए उन्होंने आश्रम की भूमि सरकार को भेंट कर दी। वास्तव में तो जब भूमि गांधी जी के पास न रही तो उस पर कर देने का प्रश्न ही नहीं उठता था। लेकिन प्रयोजन था जनता को यह सिखाने का कि यदि किसान लगान बन्दी भी करें तो खेती की अपनी भूमि पर अपना अधिकार करने के लिये नहीं। अर्थात् भूमि पर जमींदार या सरकार के स्वमित्व के अधिकार पर कोई चोट न आये। अभागा किसान लगान बन्दी का आन्दोलन आध्यात्मिक उन्नति के लिये नहीं बल्कि जिन्दा रहने के अवसर के लिए कर रहा था। गांधी जी ने उसे जीवन के आधार भूमि को छोड़ देने का उपदेश दिया। सम्पत्ति के अधिकारों की रक्षा का इस से अच्छा मार्ग अब तक कोई भी सामन्तवादी या पूंजीवादी नेता नहीं निकाल सका।

परन्तु ब्रिटिश सरकार को अपनी शक्ति पर अन्ध अभिमान था। वह चाहती थी गांधी जी और कांग्रेस को नीचा दिखा कर इन्हें जनता की नज़रों में गिरा देना। सरकार ने आश्रम की भूमि लेने से इन्कार कर दिया और गांधी जी को फिर गिरफ्तार कर लिया गया। गांधी जी का सरकार को

अपनी भूमि सौंप देना असहयोग नहीं कहा जायगा। सरकार का यह भूमि स्वीकार न करना ही असहयोग कहा जायगा।

अब की बार गांधी जी ने जेल में असुविधा होने के कारण अनशन कर दिया और रिहा कर दिये गये।१ छूट जाने पर फिर सत्याग्रह करना उन्हें सत्य-अहिंसा की भावना के विरुद्ध जान पड़ा। इस में गांधी जी को 'सत्य-अहिंसा' का एक ही लक्ष्य दिखाई दे रहा था; जैसे भी हो, आन्दोलन स्थगित हो जाये। गांधी जी ने न केवल अपना व्यक्तिगत सत्याग्रह स्थगित कर दिया बल्कि पूरे आन्दोलन को ही स्थगित कर दिया। इस अवसर पर गांधी जी का ७ अप्रैल १९३४ का बयान था:—

"जो लोग मेरे प्रत्यक्ष दिये गये या अप्रत्यक्ष रूप से समझे परामर्श के अनुसार स्वराज्य प्राप्ति के लिये सत्याग्रह करने के लिये प्रेरित हुए हों, कृपा कर सत्याग्रह करने से रुक जायं।"२

इस आन्दोलन को आरम्भ करते समय, २७ फरवरी १९३० को जो घोषणा गांधी जी ने की थी, यहाँ उसे भी याद कर लेना अप्रासंगिक न होगा। यह घोषणा थी:—"इस बार सविनय आज्ञा भंग आन्दोलन आरम्भ होने पर रुक नहीं सकेगा और उस समय तक समाप्त नहीं होगा जब तक कि एक भी सत्याग्रही जेल से बाहर रहेगा या जीवित रहेगा।"—यह गांधीवाद के कर्म और बचन की एकता का प्रमाण है।

जहाँ तक कांग्रेस के आन्दोलन का सम्बन्ध था, वह पूर्ण आत्म-समर्पण और असफलता से समाप्त हुआ। जनता को व्यवस्था की क्रान्ति के मार्ग की ओर बढ़ते देख कर कांग्रेस को पूँजीवादी व्यवस्था और ब्रिटिश शासन की रक्षा के लिये आन्दोलन को स्थगित कर देना पड़ा। कांग्रेस अपने असहयोग का दबाव डाल कर ब्रिटिश सरकार को अपनी मांगों से सहयोग करने के लिए विवश न कर सकी। कांग्रेसी नेता ही फिर से विधान सभाओं में जाकर सर-कार से सहयोग के लिये विवश हो गए। ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस को तो खूब नीचा दिखा लिया परन्तु जनता की क्रान्तिकारी भावना के आतंक को और अपने शासन की एक मात्र रक्षक अपनी भारतीय सेनाओं में भी विद्रोह की आशंका भी उस ने समझ ली।

---

१ 'कांग्रेस का इतिहास' पृ० ५७६

२ 'कांग्रेस का इतिहास' पृ० ५८४

इस देश में अभी तक ब्रिटिश-शासक श्रेणी के सहयोगी थे, देशी नरेश और जमींदार। इन के सहयोग से अपने शासन की रक्षा का भरोसा ब्रिटिश सरकार अब नहीं कर सकती थी। उन्हें आवश्यकता थी देश की जनता पर प्रभाव रखने वाली राजनैतिक शक्तियों के सहयोग की जो विदेशी सरकार को जनता के विरोध से बचा सकें। ब्रिटिश शासक श्रेणी ने, इस समय तक देश में खूब बढ़ चुके हिन्दू-मुसलिम भेद की स्थिति का फ़ायदा उठा कर, देश के ग्यारह प्रान्तों में कांग्रेस को और शेष प्रान्तों में मुसलिम लीग को, ब्रिटिश गवर्नरों की मातहती में प्रान्तीय शासन का अवसर देकर, यह सहयोग प्राप्त कर लिया। पूर्ण स्वराज्य की प्रतिज्ञाओं से जनता को उन को मुक्ति की आशा दिला-दिला कर अपना प्रभाव ब्रिटिश सरकार को दिखाने वाली कांग्रेस अपनी पूंजीपति श्रेणी को इस अवसर से लाभ उठाने का मौका देने के लिए, प्रान्तीय शासन के अधिकार को 'स्वराज्य की छाया मात्र' कह कर भी इस के लिये लपक पड़ी।

× × ×

कांग्रेस का अन्तिम सत्याग्रह

१९३७ के चुनावों में जनता ने कांग्रेस के प्रति अंग्रेज सरकार के समर्थकों के प्रति जिस प्रकार विरोध और अपना विश्वास प्रकट किया था संदेह का कोई अवसर शेष नहीं रह गया कि यदि कांग्रेस विदेशी व्यवस्था को समाप्त करने के लिये कदम उठाती तो देश की पूरी जनता उस के साथ थी। परन्तु कांग्रेस ने विदेशी व्यवस्था को समाप्त करने के लिये कदम न उठा कर ब्रिटिश साम्राज्यशाही की आर्थिक-व्यवस्था के अन्तर्गत भारतीय पूंजीपति श्रेणी के हाथ में शासन पाने के लिये समझौते का प्रयत्न शुरू किया। प्रांतीय स्वराज्य की व्याख्या करते हुए गांधी जी ने अपने पत्र हरिजन में लिखा था:—प्रजातंत्रवादी ब्रिटेन ने भारत में एक विचित्र व्यवस्था कायम की है। यह व्यवस्था वास्तव में एक सुसंगठित सैनिक-शासन ही है। नये भारतीय विधान से इस में कोई अंतर नहीं आ पाया है। जहाँ तक शासन के वास्तविक अधिकारों और शक्ति

का संबंध है, मंत्री लोग केवल खिलौना मात्र हैं। कलेक्टर और पुलिस जब चाहें, गवर्नरों का इशारा पाते ही इन मंत्रियों को पकड़ कर कोतवाली में बंद कर दे सकते हैं। इसलिये मैं कहता हूँ कि कांग्रेस ने नया विधान बनाने वालों की इच्छा को पूर्ण करने के लिए इसे स्वीकार नहीं किया बल्कि इस विधान को समाप्त कर भारत के लिए यथासंभव शीघ्र वास्तविक स्वतंत्रता का विधान बनाने का प्रयत्न करने के लिए ही इस विधान को स्वीकार किया है।" * परन्तु इस प्रांतीय स्वायत्त शासन के समय जहाँ और जब भी किसान मजदूर जनता ने विदेशी व्यवस्था द्वारा स्थापित आर्थिक व्यवस्था के शोषण के बंधनों के विरुद्ध आवाज उठाई, कांग्रेस सरकारों ने इस प्रकार का दमन कर के ब्रिटिश शासन की शोषक व्यवस्था को जमाये रखने और पूंजीपति श्रेणी के नियंत्रण को दृढ़ बनाने का ही प्रयत्न किया।

कांग्रेस को प्रांतीय शासन का जो अवसर मिला था उस में कांग्रेस की प्रवृत्ति जनता को आत्मनिर्णय का अवसर देकर सर्वसाधारण के शोषण के बंधनों को तोड़ने की ओर था अथवा पूंजीवादी श्रेणी का निरंकुश शासन भारतीय जनता पर कायम करने की, यह बात १६३६ सितम्बर में दूसरा विश्वव्यापी युद्ध आरम्भ हो जाने पर शीघ्र ही स्पष्ट हो गई।

दूसरा विश्वव्यापी युद्ध १६३६ सितम्बर से १६४५ अगस्त तक रहा। इस समय फिर से भारत में जनवादी शक्तियों और ब्रिटिश शासन-शक्ति में ज़ोर आजमाई होती रही। देश की जनता और ब्रिटिश शासन-शक्ति के बीच इस संघर्ष में कांग्रेस की नेताशाही का व्यवहार स्पष्ट रूप से ब्रिटिश शासन-शक्ति को जनता की चोट से बचाकर जनता को आत्मनिर्णय के अधिकार का अवसर पा सकने से वंचित रखने का और देश की पूंजीवादी श्रेणी के लिए शासन का अधिकार पा सकने के लिए ब्रिटिश सरकार का सहयोग पाने का ही रहा।

युद्ध आरम्भ होते ही वायसराय ने कांग्रेस — सरकारों की अनुमति लिये बिना भारत के युद्ध में भाग लेने की घोषणा कर दी। कांग्रेस ब्रिटिश साम्राज्यशाही को युद्ध में सहायता देने का 'मूल्य' चाहती थी। कांग्रेस ब्रिटेन की सहायता के लिये देश का जन और धन दे सकती थी और इस सहायता के मूल्य में वह

---

* "Harijan" August. 1938.

देश की पूंजीपति श्रेणी के हाथ में शासन अधिकार ले लेना चाहती थी। इस 'मूल्य' का आश्वासन न मिलने के कारण कांग्रेस ने ब्रिटिश साम्राज्यशाही को सहायता न देने के लिए असहयोग की घोषणा कर दी।

कांग्रेस ने युद्ध से असहयोग का जो आन्दोलन चलाया वह अनोखे ही ढंग का था। इस आन्दोलन के समय कांग्रेस की नीति और कार्यक्रम को समझने के लिए कुछ बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है। देश की सर्वसाधारण जनता क्या चाहती थी ? कांग्रेस की नीति पर नियंत्रण रखने वाला दल क्या चाहता था ? और ब्रिटिश साम्राज्यशाही का उद्देश्य क्या था ? सर्वसाधारण जनता का उद्देश्य तो सदा से स्पष्ट रहा था; जीवन रक्षा के अवसर और अधिकार की मांग। प्रधान शोषक विदेशी शासन के बंधन से मुक्ति की रक्षा। कांग्रेस की नीति पर नियंत्रण रखने वाला दल जो कि पूंजीपति श्रेणी की भावना का प्रतिनिधि था, देश के शासन का अधिकार चाहता था परन्तु विदेशी शासन द्वारा कायम की हुई आर्थिक व्यवस्था को भी कायम रखना चाहता था। ब्रिटिश साम्राज्यशाही भारत की लूट पर अधिकार में किसी प्रकार का अंतर नहीं आने देना चाहती थी।

ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत के युद्ध में घसीटे जाने के विरोध में जो घोषणा कांग्रेस-कार्यकारिणी ने की वह कांग्रेस की नीति और उद्देश्यों की पैंतराबाजी को स्पष्ट कर देती है। युद्ध आरंभ होते ही १४ सितम्बर १९३९ को कांग्रेस-कार्यकारिणी ने युद्ध से असहयोग का जो प्रस्ताव पास किया उस का भाव था—यह युद्ध साम्राज्यवादी उद्देश्य से, साम्राज्यवादी ढंग पर लड़ा जा रहा है। इस युद्ध का उद्देश्य भारत और दूसरे देशों पर साम्राज्यवादी बंधन को दृढ़ करना है। इसलिये यह कमेटी इस युद्ध में किसी प्रकार का सहयोग नहीं दे सकती।"

सिद्धान्त के नाम पर युद्ध से असहयोग की इस चुनौती के साथ ही कांग्रेस कार्यकारिणी ने ब्रिटेन को सहायता का प्रलोभन देने के लिये यह घोषणा भी कर दी—"कांग्रेस कार्यकारिणी ब्रिटिश-सरकार से अनुरोध करती है कि युद्ध के सम्बन्ध में अपने प्रजातंत्रात्मक उद्देश्य को स्पष्ट करे, और युद्ध के पश्चात् नई साम्राज्यवादी व्यवस्था में भारत का स्थान क्या होगा ? क्या ब्रिटेन युद्ध के बाद साम्राज्यशाही व्यवस्था का अंत करके भारत को आत्म-निर्णय का अधिकार दे देगा ?"

जिस समय कांग्रेस कार्यकारिणी अपने सहयोग और असहयोग की शर्तें ब्रिटेन को सुना रही थी देश की सर्वसाधारण जनता ने इस साम्राज्यवादी युद्ध के प्रति अपना विरोध असंदिग्ध व्यवहार से प्रकट कर दिया। २ अक्टूबर १६३६ के दिन बम्बई में, उस समय ब्रिटिश सरकार द्वारा गैर कानूनी करार दी गई कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा प्रभावित, मजदूरों ने एक व्यापक हड़ताल करके और प्राय: एक लाख की भीड़ का प्रदर्शन कर के सर्वसम्मति से प्रस्ताव पास कर यह घोषणा कर दी:—"हम लोग संसार भर को, साम्राज्यवादी युद्ध में घसीटे जाने का विरोध करते हैं।"

कांग्रेस-कार्यकारिणी ने ब्रिटिश सरकार को पिघलते न देख कर अपनी मांगें ग्राह्य बनाने के लिये यह प्रार्थना की कि यदि सरकार केंद्र में एक ऐसी अस्थायी राष्ट्रीय सरकार बना दे जिस पर केंद्रीय विधान सभा के सदस्यों का भरोसा हो सके तो कांग्रेस देश की रक्षा के लिये युद्ध में सहयोग देने के अपने कर्तव्य को पूरा कर सकेगी। परन्तु ब्रिटिश सरकार इस के लिये भी तैयार न हुई।

ब्रिटिश साम्राज्यशाही को धमकाने के लिए कांग्रेस ने एक ओर तो मंत्री पदों से इस्तीफे देकर जनता के सामने सरकार से असहयोग की घोषणा कर दी दूसरी ओर १४ सितम्बर १६३६ को घोषित किये असहयोग के प्रस्ताव में संशोधन करके और गांधी जी को वायसराय के पास अपने दूत के रूप में भेज कर युद्ध में सहायता देने के लिये समझौते के रूप में शासन के अधिकार का मूल्य मांगती रही। कांग्रेस के इस व्यवहार से गांधी जी की स्थिति कठिनाई में पड़ गई।

गांधी जी भारतीय जनता और संसार के दूसरे देशों की जनता के सामने अहिंसा के अपने सिद्धान्तों को आध्यात्मिक स्तर पर रखते आये थे। उन का दावा था कि वे केवल भारत के स्वार्थ की चिन्ता न कर संसार भर को शान्ति का मार्ग दिखा रहे हैं। अब कांग्रेस कार्यकारिणी में पटेल साहब, राजाजी और मौलाना आजाद को शासन का अधिकार मूल्य में मांग कर युद्ध की हिंसा में सहयोग देने के लिये तैयार हो जाते देख कर गांधी जी को इस बात की आशंका हुई कि संसार की दृष्टि में उन के अहिंसा के दावे का कुछ मूल्य न रह जायगा। शासन का अधिकार पाने के मूल्य में युद्ध की हिंसा में सहयोग देना गांधी जी को अनैतिक जान पड़ रहा था।

गांधी जी अपनी अहिंसा का विश्वास दिला कर ही ब्रिटिश शासन से अपना उद्देश्य पूरा कराने पर तुले हुये थे। युद्ध की हिंसा से दूर रहना वे कहाँ तक उचित समझते थे ? यह कहना कठिन है क्यों कि युद्ध आरम्भ होते ही गांधी जी ने वायसराय को यह आश्वासन दिया था कि उन का बस चले तो वे—"ब्रिटेन के संकट के समय कोई भी शर्त पेश किये बिना ब्रिटेन को पूरी सहायता दिलाना चाहते हैं।" कांग्रेस कार्यकारिणी के पूना अधिवेशन में २७-२८ जुलाई १९४० को शासन का अधिकार पाने की शर्त पर ब्रिटिश साम्राज्यशाही को युद्ध में सहायता देने के प्रस्ताव के सम्बन्ध में गांधी जी और कांग्रेस के दूसरे नेताओं में खूब आपसी दोषारोपण हुआ। गांधी जी का कहना था कि मूल्य लेकर हिंसा में सहयोग देना अहिंसा के सिद्धान्त के प्रति अविश्वास प्रकट करना है। यदि हम ब्रिटेन को युद्ध में सहायता देना उचित समझते हैं तो वह बिना किसी शर्त के दी जानी चाहिये। पटेल साहब का कहना था कि जब गांधी जी ब्रिटेन को युद्ध में सहायता देने में बुराई नहीं समझते तो इस सहायता का मूल्य क्यों न ले लिया जाये। राजा जी ने गांधी जी पर यह ताना कसा कि १९१४ में गांधी जी ब्रिटिश साम्राज्यशाही की सहायता के लिये जब सैनिक भरती करा रहे थे तब इन का अहिंसा सिद्धांत कहाँ गया था ?*

गांधीजी को अपने कार्यक्रम से सहमत न होते देख कांग्रेस उन्हें एक ओर छोड़कर सरकार से भाव-तोल में सफल न हो सकी। कांग्रेस के प्रमुख नेता जब गांधीवाद को अपने उद्देश्य की पूर्ति में सहायक नहीं समझते तब उसे असंगत और अक्रियात्मक बताकर एक ओर छोड़ देते हैं। परंतु गांधीजी के नाम पर जनता को अपने पीछे चलाने के लिए गांधी जी को भारत का एक मात्र अचूक पथ-प्रदर्शक बताते आये हैं। ब्रिटिश सरकार गांधीजी तथा कांग्रेस कार्यकारिणी के मतभेद से परिचित थी ही इस के इलावा उन के पास मुस्लिम लीग और कांग्रेस की प्रतिद्वन्दिता का भी बहाना था। ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस की केन्द्र में अस्थायी सरकार की मांग का उत्तर दिया कि देश पर

---

* इस अवसर पर पटेल साहब, राजा जी और दूसरे कांग्रेसी नेताओं ने गांधी जी की अहिंसा को अपनी स्वार्थ साधना में अड़चन समझ कर उस का कैसा विरोध किया था यह देखने के लिये लेखक की पुस्तक 'गांधीवाद की शव परीक्षा', का अन्तिम अध्याय 'सत्य अहिंसा का अन्तिम प्रयोग' देखिये।

संकट की अवस्था में सरकार देश का शासन किसी एक ऐसी पार्टी के हाथ में सौंपने के लिये तैयार नहीं हो सकती जिस के विरोध में देश का एक महत्वपूर्ण अंग (मुस्लिम जनता) खड़ा हो ।

अपनी मांग ठुकरा दी जाने के कारण कांग्रेस ने जनता के असंतोष का दबाव सरकार पर डाल कर अपने सहयोग का मूल्य भी समझ लेना आवश्यक समझा । इस से पूर्व युद्ध आरम्भ होते ही मंत्री पदों से इस्तीफे देकर कांग्रेस जनता को संघर्ष का संकेत दे चुकी थी । कांग्रेस का यह अनुमान कि युद्ध के संकट की परिस्थिति में ब्रिटिश सरकार जनता पर कांग्रेस के प्रभाव के भय से उन की शर्तों को तुरंत मान लेगी ठीक प्रमाणित नहीं हुआ । जनता सरकार से संघर्ष पर तुली बैठी थी । वामपक्ष की शक्तियाँ संघर्ष के लिये उतावली जनता का नेतृत्व सम्भाले ले रही थीं । कम्युनिस्ट पार्टी यद्यपि गैरकानूनी होने के कारण आन्दोलन का नेतृत्व प्रकट रूप में नहीं कर सकती थी परन्तु उन के युद्ध विरोधी कार्यक्रम की ओर जनता खिची चली जा रही थी । जब तक कांग्रेस को आशा थी कि आन्दोलन आरम्भ किये बिना अपनी सहायता की उपयोगिता दिखा कर और युद्ध के आरम्भ में ब्रिटेन की निर्बल अवस्था से लाभ उठा कर वे अपनी शर्तें मनवा सकेंगे, तब तक कांग्रेस नेताओं ने उस समय की परिस्थितियों में गांधी जी की अहिंसा को अक्रियात्मक बता कर, गांधी जी को आध्यात्म-चिन्तन के लिये एक ओर छोड़ दिया । परन्तु जब सरकार कांग्रेस के सहयोग का मूल्य देने के लिये किसी भी रूप में तैयार नहीं हुई और जनता वामपक्ष के नेतृत्व में चली जाती दिखाई देने लगी तो आन्दोलन का 'प्रदर्शन' आवश्यक ही हो गया । कांग्रेस को फिर से गांधी जी के नेतृत्व की अनिवार्य आवश्यकता अनुभव हुई और असहयोग आन्दोलन आरम्भ कर के आन्दोलन के एक-छत्र नेता के रूप में कांग्रेस के आन्दोलन की बागडोर गांधी जी के हाथ में सौंप दी गई ।

जनता के सामने तो आन्दोलन आरम्भ करने का कारण विदेशी शासन से मुक्ति की इच्छा थी । विदेशी शासन पर चोट करने से उस शासन की आर्थिक व्यवस्था लपेट में आये बिना नहीं रह सकती थी । इसलिए गांधी जी ने आन्दोलन की मांग रखी, "अहिंसा की रक्षा के लिये सिद्धान्त रूप से युद्ध के विरोध में भाषण की स्वतंत्रता ।" मानों जनता के जीवन की अपनी कोई समस्या नहीं थी । खाली बैठी जनता अहिंसा के सिद्धान्त की चिंता कर सकती

थी। अथवा युद्ध की हिंसा का जनता के नित्य के जीवन से कोई सम्बन्ध ही नहीं था।

गांधी जी एक बार फिर वायसराय से मिल कर ब्रिटेन को कठिनाई के समय उसे परेशान न करने की अपनी इच्छा का आश्वासन दे आये। आन्दोलन जिस ढंग से और जिस रूप में आरम्भ किया गया, उसे किसी भी दृष्टिकोण से विदेशी शासन से स्वतंत्रता की मांग का आन्दोलन नहीं कहा जा सकता था। ऐसे आन्दोलन को केवल जनता को स्वतंत्रता प्राप्ति के आन्दोलन से हटा कर अहिंसा की रक्षा के आन्दोलन की भूल भुलैया में फंसाना ही कहा जायगा। कांग्रेस का घोषित उद्देश्य तो देश की स्वतंत्रता ही था परन्तु गांधी जी कांग्रेस को संसार के सामने अपने आध्यात्मिक आदर्श के प्रचार का साधन बना कर संसार के आध्यात्मिक गुरू बनना चाहते थे।

गांधी जी ने अनेक बार इस बात पर जोर दिया था कि कांग्रेस अपना उद्देश्य देश की स्वतंत्रता के बजाय "अहिंसा की रक्षा' स्वीकार कर लेता कि कांग्रेस और गांधी जी के प्रचार और प्रभाव का क्षेत्र भारत की भौगोलिक सीमाएँ लांघ कर संसार भर के आध्यात्मवादियों और आदर्शवादियों तक पहुँच जाय। परन्तु वैधानिक रूप से कांग्रेस नेताओं ने कभी ऐसा स्वीकार नहीं किया। क्योंकि देश की पूंजीपति श्रेणी कांग्रस को आदर्शवाद के प्रचार का साधन न बना कर अपने लिए शासन का अधिकार प्राप्त करने का ही साधन बनाये रखना चाहती थी। ऐसी अवस्था में कांग्रेस से आन्दोलन का लक्ष्य स्वतंत्रता प्राप्ति से हटा कर अहिंसा का सिद्धांत बना देना कांग्रेस का जनता के प्रति लक्ष्य बदल देना या विश्वासघात नहीं तो क्या कहा जा सकता है।

आन्दोलन को व्यक्तिगत सत्याग्रह का नाम दिया गया। जिस आन्दोलन में बीस-पच्चीस हजार व्यक्ति भाग लें उसे व्यक्तिगत किस दृष्टि से कहा जा सकता है? आन्दोलन को व्यक्तिगत बनाने का अभिप्राय आन्दोलन से सर्व साधारण को दूर रखना ही था। इस समय आन्दोलन के रूप में व्यापक संघर्ष उठ खड़ा होने से युद्ध में फंसे ब्रिटिश शासन के लिये देश में व्यवस्था को सम्भाले रखना कठिन हो जाता। कांग्रेस के आन्दोलनों के लिये साधन जुटाने वाली पूंजीपति श्रेणी आन्दोलन खड़ा करके युद्ध के समय के अपने असीम मुनाफों में विघ्न नहीं डालना चाहती थी। व्यक्तिगत आन्दोलन की सबसे

बड़ी विशेषता यह थी कि आन्दोलन को वास्तव में रोक कर देश में आन्दोलन चलाने के मिथ्या विश्वास का वातावरण पैदा कर दिया गया।

आन्दोलन के एक छत्र नेता गांधी जी ही आन्दोलन में भाग लेने की आज्ञा व्यक्तियों को दे सकते थे। आन्दोलन में भाग ले सकने के लिये गांधी जी ने पहली शर्त रखी थी—"ईश्वर में विश्वास होना!" जिस का स्पष्ट अर्थ था कि परम्परागत नैतिकता अर्थात् भगवान द्वारा बनाई हुई सामाजिक आर्थिक व्यवस्था के प्रति शंका करने वाले लोग आन्दोलन के मोर्चे पर आकर उसे प्रभावित न कर सकें। आन्दोलन पर ईश्वर विश्वास की शर्त लगाना कांग्रेस के विधान के प्रजातंत्रात्मक आधार को स्पष्ट रूप से पददलित करके उस पर गांधीवादी तानाशाही का सिक्का जमा देना हुआ। कांग्रेस के विधान के अनुसार कांग्रेस में सभी संप्रदायों के लिये एक समान स्थान या अधिकार होना चाहिए। कांग्रेस की सदस्यता पर सांप्रदायिकता की कोई शर्त लगाना कांग्रेस के आधारभूत विधान के विरुद्ध था परन्तु गांधी जी ने परम्परागत धारणाओं में परिवर्तन चाहने वाले और व्यवस्या में क्रान्ति चाहने वाले लोगों को कांग्रेस के क्षेत्र से बाहर रखने के लिये और अपनी तानाशाही कांग्रेस के आन्दोलन पर जमाने के लिये यह सब किया।

गांधी जी का यह उद्देश्य इस बात से स्पष्ट हो जाता है कि एक ओर तो उन्होंने कांग्रेस के व्यक्तिगत के सत्याग्रह आन्दोलन में भाग लेने की मुख्य शर्त 'ईश्वर में विश्वास' निश्चित कर दी और उस में भाग लेने की आज्ञा देना रखा अपने हाथ में तिस पर कांग्रेस के अनुसासन पर यह नियम भी लागू कर दिया कि जो व्यक्ति इस आन्दोलन में भाग न ले वह कांग्रेस में किसी उत्तरदायी स्थान पर नहीं रह सकता। इसे कांग्रेस पर गांधी जी का व्यक्तिगत नियंत्रण न कह कर और क्या कहा जायगा? कांग्रेस के उन सब नेताओं ने जिन में पं० नेहरू, पटेल, राजगोपालाचारी और मौलाना आजाद भी सम्मिलित थे और जो कांग्रेस का लक्ष्य 'स्वराज्य' की अपेक्षा 'अहिंसा की रक्षा' बना देने का विरोध करते आये थे, इस अवसर पर गांधी जी की इस तानाशाही का कोई विरोध नहीं किया। क्योंकि युद्ध की इस परिस्थिति में आन्दोलन को क्रान्ति का रूप लेने से बचाये रखने का एक मात्र भरोसे लायक साधन उन की दृष्टि में गांधीवादी तानाशाही ही थी। यह गांधीवादी तानाशाही ही जनता को क्रान्ति के मार्ग से रोक सकती थी।

आन्दोलन 'स्वराज्य' के लक्ष्य को छोड़ कर 'अहिंसा की रक्षा' के लिये युद्ध-विरोधी भाषण की स्वतंत्रता की मांग पर चला। गांधी जी द्वारा आन्दोलन में भाग लेने की आज्ञा पाने वाले व्यक्ति भी युद्ध-विरोधी भाषण नहीं देते थे। वे केवल सरकारी अधिकारियों को पत्र लिख कर अपने विचार की सूचना मात्र दे देते थे और सरकार उन्हें जेल पहुँचा देती थी। कुछ परम गांधीवादी नेता पुलिस का ध्यान अपनी ओर आकर्षित न होने पर अपना विस्तर ले कर स्वयं थाने पहुँच जाते थे। कांग्रेस के नेताओं और सरकार में रूठने का यह खेल चल रहा था। जनता इस का कोई प्रभाव अनुभव नहीं कर रही थी। जनता को समझा दिया गया था कि उन का काम एक ओर बैठ कर सरकार और नेताओं की इस पकड़ का परिणाम देखना ही है। सितम्बर १६४० में गांधी जी ने बम्बई में जनता को विश्वास दिलाया कि यह आन्दोलन स्वराज्य के मार्ग पर एक बड़ा भारी कदम है।

इस आन्दोलन को ब्रिटिश सरकार ने जेलों में राजनैतिक बन्दियों की संख्या बढ़ जाने के अतिरिक्त और किसी रूप में अनुभव नहीं किया। जनता अवश्य एक ऐसे आन्दोलन के उहापोह में लटकी हुई थी जिन का प्रयोजन या रूप वह कुछ समझ नहीं सकती थी। गांधी जी की विशेष आज्ञा थी कि आन्दोलन के कारण सरकार या सरकारी अफ़सरों को किसी भी प्रकार की अड़चन का सामना न करना पड़े। यहां तक कि रविवार के दिन सरकारी अफ़सरों के विश्राम और विनोद में व्याघात न आने देने के लिए सत्याग्रह का साधारण कार्यक्रम भी स्थगित रहता था। इस प्रकार के आन्दोलन से सब से अधिक लाभ हुआ देश की पूंजीपति श्रेणी को उन के व्यवसायों में किसी प्रकार की विश्रृंखला न आ सकी।

इन दिनों देश भर में एक ही व्यवसाय चल रहा था, सरकार को युद्ध का सामान मुहय्या करके अंधे मुनाफे बटोरना। युद्ध से देश में मँहगाई बढ़ कर मजदूर और निम्न-मध्यम श्रेणी की अवस्था शोचनीय होती जा रही थी परन्तु मजदूरी की बढ़ती की मांग करके जनता युद्ध के प्रयत्नों में अड़चन नहीं डाल सकती थी। मिलों और व्यवसायों में युद्ध विरोधी हड़तालें कराने वाले वाम-पक्ष के राजनैतिक कार्यकर्ताओं अथवा कम्युनिस्टों को सरकार ने जेल में ठूंस दिया था और गांधी जी ने सितम्बर १६४० के अपने बम्बई के भाषण में सरकार द्वारा ऐसे लोगों के दमन का समर्थन भी कर दिया। गांधी जी की

यह नीति उन की १९३० से चली आयी 'व्यवस्था में क्रान्ति' चाहने वालों को हिंसापरक बता कर उन्हें अपनी नीति तथा सरकार के शासन के साझे शत्रु बताने की नीति के अनुकूल ही था।

गांधी जी की नीति के अनुसार इस देश की व्यवस्था में क्रांति चाहने वाले लोग कांग्रेस और ब्रिटिश व्यवस्था दोनों के साझे शत्रु थे। जनता किसी भी समय उद्विग्न हो कर कांग्रेस के निष्क्रियता के अनुशासन से भड़क न जाये इसलिये कांग्रेस की ओर से सदा ही व्यापक और सार्वजनिक आन्दोलन शीघ्र आरम्भ होने की घोषणा भी होती रहती थी। इस का सब से उपहास पूर्ण उदाहरण उस समय के कांग्रेस के प्रधान मौलाना आज़ाद का १३ दिसम्बर १९४० का वक्तव्य है जिस में उन्होंने जनता को 'व्यापक सार्वजनिक सत्याग्रह' के लिये तैयार हो जाने लिये पुकारा था और जनवरी १९४१ में गांधी जी ने सत्याग्रह के 'व्यक्तिगत सीमा' से बाहर न जाने की चेतावनी दे दी थी।

युद्ध के पहले भाग में ब्रिटेन जर्मनी से बुरी तरह पिट रहा था। देश की सीमाओं पर किसी शत्रु के आक्रमण की आशंका नहीं थी। देश की सीमाओं पर किसी शत्रु के आक्रमण की आशंका नहीं थी। देश की जनता आर्थिक कठिनाइयों से ऊब कर क्रान्ति के लिये व्याकुल थी। उस समय कांग्रेस के उपरोक्त निष्क्रिय आन्दोलन का लाभ देश की पूंजीपति श्रेणी ने कितना उठाया इस का अनुमान एक ही बात से लग सकता है। भारत सैकड़ों वर्षों से इंगलैण्ड का कर्ज़दार चला आ रहा था। युद्ध के समय के व्यवसायिक हेर-फेर से भारत कर्ज़दार नहीं रहा बल्कि साहूकार हो गया। इस का अर्थ युद्ध के कारण देश के सर्वसाधारण की समृद्धि नहीं था बल्कि युद्ध के समय ब्रिटेन ने इस देश से इतना अधिक धन खींचा कि पिछला कर्जा समाप्त होकर भारत के नाम बही खाते में लेनदारी चढ़ा दी गई। इस लूट में काफी भाग पाकर भारतीय पूंजीपतियों ने भी खूब पूंजी बटोर ली।

भारत की इस समृद्धि का परिणाम सर्वसाधारण के जीवन पर तो यह हुआ कि उन की आमदनी में कोई परिवर्तन नहीं आया और उन्हें जीवन के आवश्यक पदार्थों का मूल्य पहले से तिगुना और चौगुना देना पड़ रहा था। चीजों के महंगा हो जाने या रुपये का दाम घट जाने से (अर्थात् मुद्रास्फीत—Inflation से) सर्वसाधारण जनता कष्ट भोगती है परन्तु पूंजीपति श्रेणी को अपना व्यापार बढ़ा कर अधिक पूंजी बटोरने की सुविधा हो जाती है।

देश की पूंजीपति श्रेणी के मुनाफों का यह हाल था कि वे युद्ध को समाप्त ही नहीं होने देना चाहते थे। उन की स्थिति लाखों की पूंजी से बढ़ कर करोड़ों तक पहुँच गई।

युद्ध की उपरोक्त स्थिति में हिटलर ने १९४१ जून में सोवियत रूस पर आक्रमण कर दिया और जापान एशिया में अपना एक-छत्र साम्राज्य स्थापित करने के लिये टूट पड़ा। भारत के राजनैतिक मत ने स्थिति के इस परिवर्तन को भी समझा। पं० नेहरू ने १९४१ दिसम्बर में घोषणा की—"इस समय संसार की प्रजातंत्रवादी और प्रगतिशील शक्तियां ब्रिटेन, अमेरीका, रूस और चीन के नेतृत्व में फासिस्ट अतिक्रमण का सामना कर रही हैं।" कांग्रेस के पूंजीवादी नेतृत्व ने इस नयी स्थिति में ब्रिटिश सरकार को अपना सहयोग बेचने का प्रयत्न दुबारा आरम्भ किया। इस प्रयत्न में विफलता का परिणाम हुआ असहयोग आन्दोलन के रूप में "अगस्त क्रान्ति।"

१९४२ और ४३ में अगस्त क्रान्ति के नाम से जो घटनाएँ हुईं और जिन का श्रेय कांग्रेस नेताओं ने ब्रिटिश शासन व्यवस्था को पराजित करने के रूप में बाद में अपने सिर ले लिया, उन की संगति को समझने के लिए युद्ध की बढ़ती हुई नयी स्थिति में कांग्रेस-कार्यकारिणी के जनवरी १९४२ के प्रस्ताव को याद कर लेना सहायक होगा। कांग्रेस के इस प्रस्ताव का आशय था :—"यद्यपि ब्रिटेन की नीति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है परन्तु इस कमेटी को युद्ध की बदली हुई परिस्थितियों और युद्ध के भारत की सीमा तक पहुँच जाने के तथ्य पर विचार करना ही होगा। कांग्रेस की सहानुभूति अनिवार्य रूप से उन्हीं लोगों के साथ है जिन पर अत्याचार और आक्रमण हो रहा है और जो लोग अपनी स्वतंत्रता के लिये लड़ रहे हैं; परन्तु केवल स्वतंत्र भारत ही राष्ट्रीय आधार पर इस देश की रक्षा कर सकता है........इस प्रस्ताव द्वारा हम ब्रिटिश सरकार को समझौते और सहयोग के लिये आमंत्रण देते हैं। हमें आशा है कि ब्रिटिश सरकार हमारे सहयोग का मूल्य समझेगी।"

मार्च १९४५ में जापान बर्मा को भी जीत चुका था और भारत पर आक्रमण की आशंका उग्र रूप ले चुकी थी। कांग्रेस के नेता अपने प्रस्तावों में मित्र राष्ट्रों के उद्देश्य से सहानुभूति प्रकट कर के उन की विजय की कामना कर रहे थे और स्पष्ट शब्दों में कह चुके थे कि 'चीन और रूस की स्वतंत्रता' उन की दृष्टि में 'बहु मूल्य है' और उन्हें इस बात का ध्यान है कि जर्मनी

से रूस की रक्षा और जापान से चीन की रक्षा के प्रयत्न में किसी भी प्रकार की अड़चन न आये। नयी परिस्थिति में कांग्रेस ने फिर प्रस्ताव किया कि ब्रिटेन भारत की राष्ट्रीय स्वतंत्रता स्वीकार कर ले तो कांग्रेस ब्रिटेन को युद्ध में पूरा सहयोग देगी।

ब्रिटेन ने यह प्रस्ताव भी ठुकरा दिया। ब्रिटेन के इस व्यवहार पर कांग्रेस कार्य-कारिणी ने अपनी स्थिति अपने १४ जुलाई के प्रस्ताव में यों स्पष्ट की थी "ब्रिटेन द्वारा हमारा प्रस्ताव ठुकरा दिये जाने के कारण देश में ब्रिटेन के विरुद्ध विद्वेष की धारणा फैलती जा रही है और लोग जापानी सेनाओं की विजय से प्रसन्न हो रहे हैं। कार्यकारिणी इस स्थिति से बहुत चिंतित है।" देश पर जापानी आक्रमण की आशंका स्पष्ट दिखाई दे रही थी। ब्रिटेन से असहयोग करके भी कांग्रेस जापानी आक्रमण से देश की प्रजा की रक्षा के उपायों के लिए चिंतित थी। पं० नेहरू के नेतृत्व में इस प्रयोजन से आत्मरक्षा दल संगठित हो रहे थे। चीन, आस्ट्रेलिया और अमेरिका भी ब्रिटिश सरकार पर इस बात के लिए जोर डाल रहे थे कि फैसिस्ट आक्रमण के विरुद्ध भारत का सहयोग पाने लायक स्थिति पैदा की जाय। कांग्रेस पूरा सशस्त्र सहयोग देने के शर्तों पर ब्रिटिश सरकार को अपना सौदा स्वीकार करने की दावत दे रही थी। यह बात गांधी जी को मान्य नहीं हो सकती थी। इसलिए गांधी जी को फिर कांग्रेस के नेतृत्व से अलग कर दिया गया। परन्तु चर्चिल के नेतृत्व में ब्रिटिश साम्राज्यशाही के हठ के कारण समझौता नहीं हो सका। ब्रिटिश सरकार ने मुस्लिम जनता के कांग्रेस विरोध का बहाना करके कांग्रेस की मांग को ठुकरा दिया। कांग्रेस ने फिर असहयोग आन्दोलन की बात आरम्भ की और अगस्त ९ को फिर असहयोग आंदोलन आरम्भ करने का प्रस्ताव पास कर लिया।

असहयोग के इस प्रस्ताव में भी कांग्रेस ने मित्रराष्ट्रों के उद्देश्य के प्रति अपनी पूरी सहानुभूति प्रकट करके उन की विजय कामना की और इस बात का निश्चय दिलाया कि अपनी स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिये उन का कोई व्यवहार फसिज्म का विरोध करने वाले राष्ट्रों चीन और रूस की आत्मरक्षा के प्रयत्नों में कोई अड़चन न डालेगा और कांग्रेस भारत की रक्षा के लिये अहिंसात्मक सशस्त्र और सभी उपायों से फैसिस्त शक्तियों का सामना करेगी। अपने उद्देश्यों और नीति की इस घोषणा के साथ कांग्रेस ने एक व्यापक सार्वजनिक

युद्ध विरोधी असहयोग आंदोलन के आरम्भ करने की भी घोषणा कर दी। इन दोनों परस्परविरोधी घोषणाओं में क्या सामजस्य हो सकता था ?

युद्ध की उस स्थिति में जब कि भारत की सीमा पर संकट की कोई आशंका नहीं थी और योरप में जर्मनी के धावों का लक्ष्य प्रधानतः इंगलैण्ड बना हुआ था उस समय तो आन्दोलन का रूप निश्चित किया गया था सीमित 'व्यक्तिगत सत्याग्रह' परन्तु १९४२ में जब कि जापान की सेनाएँ भारत की सीमा पर पहुँच चुकी थीं और कांग्रेस का उद्देश्य योरप में फैसिज्म की पराजय के लिये मित्रराष्ट्रों की सहायता देना था, घोषणा की गई व्यापक सार्वजनिक युद्ध-विरोधी आंदोलन की। भारत में ब्रिटिश सरकार के शासन में जो युद्ध के प्रयत्न चल रहे थे उन का उद्देश्य अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में फैसिस्त अतिक्रमण के के विरुद्ध मित्रराष्ट्रों की सहायता करना था।

कांग्रेस ने इन में अपनी सहानुभूति प्रकट की थी और भारत की सीमा पर जापानी आक्रमण से भारत की रक्षा करना अपना भी उद्देश्य बताया था। यह कैसे सम्भव था कि युद्ध विरोध के लिये सार्वजनिक और व्यापक असहयोग से मित्र राष्ट्रों को भारत से मिलने वाली सहायता में और भारत की सीमाओं पर जापानी सेनाओं को रोक सकने के ब्रिटेन के सामर्थ्य में कोई असर न पड़ता ?

कांग्रेस यदि ऐसी कल्पना करती थी तो उस का अभिप्राय आंदोलन को ऐसा रूप देने का नहीं था जिस से ब्रिटिश सरकार को किसी रूप में परेशानी होती। इस अवसर पर सरदार पटेल ने देश को यह विश्वास दिलाया था कि इस आंदोलन द्वारा देश सात दिन में ब्रिटिश शासन से मुक्त हो जायगा। इस का अर्थ केवल यही हो सकता था कि सरदार साहब जापानी सेनाओं के मार्ग में ब्रिटिश सरकार द्वारा पेश की जाने वाली रुकावटों को दूर कर देना ही देश की स्वतंत्रता का मार्ग समझते थे। कांग्रेस के नेताओं के मन में क्या बात थी, यह तो जनता शायद कभी न जान सकेगी परन्तु जिस उद्देश्य की उन्होंने घोषणा की थी भारतीय कम्युनिष्ट पार्टी भी उसी उद्देश्य की घोषणा कर रही थी। इस परिस्थिति में २६ जुलाई १९४२ को भारतीय कम्युनिष्ट पार्टी ने कांग्रेस की आत्म विरोधी घोषणाओं के प्रति चेतावनी देने के लिये यह सार्वजनिक घोषणा की "........ऐसी अवस्था में आप आंदोलन आरम्भ करेंगे तो परिणाम क्या होगा ? सरकार सभी नेताओं को और कांग्रेस के हजारों कार्यकर्ताओं को

उठाकर जेलों में वन्द कर देगी और संसार को समझा देगी कि फैसिस्त आक्रमण से देश की रक्षा करने के लिए ऐसा करना अनिवार्य था।"

कम्युनिस्ट पार्टी ने ऐसी अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति में युद्ध-विरोधी आंदोलन आरम्भ करना देश-हित और कांग्रेस के उद्देश्य के विरुद्ध और अनुचित वताया। कम्युनिस्ट पार्टी ने जापानी आक्रमण से देश रक्षा का एक साझा कार्यक्रम सुझाया जिस पर हिन्दू-मुस्लिम जनता साझे रूप में एकता से संगठित हो सकती थी और जिस का विरोध ब्रिटेन भी नही कर सकता था। यह प्रस्ताव स्वीकार न किया गया। कांग्रेस और मुस्लिम लीग की प्रतिद्वन्दिता अंग्रेजों से शासन का अधिकार माँगने की थी जिस का परिणाम हुआ लीग-कांग्रेस विरोध या हिन्दू-मुस्लिम विरोध को वढ़ाना। ब्रिटेन भी देश की साझी मांग के सामने झुकने के लिये मजबूर न हुआ।

कम्युनिस्ट पार्टी की नीति थी कि भारत जापानी आक्रमण से अपनी रक्षा के लिये आगे वढ़ कर युद्ध में सहयोग देने के कार्यक्रम से सशस्त्र होकर अपनी राष्ट्रीय स्वतंत्रता को वास्तविकता का रूप दे। ब्रिटेन के कांग्रेस-लीग में विरोध के वहाने का उत्तर देने के लिए कम्युनिस्ट पार्टी की यह तजवीज थी कि देश की जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार को स्वीकार कर के ब्रिटेन से साझी मांगों पर कांग्रेस और लीग की एकता स्थापित की जाय। जापान से आत्मरक्षा के लिये और विदेशी शासन से मुक्ति के लिए देश के भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों और राजनैतिक दलों में एक समझौता स्वीकार किया जाये।

कम्युनिस्ट पार्टी की इस नीति के कारण कांग्रेस नेताओं ने कम्युनिस्टों को ब्रिटिश सरकार और लीग का पिट्ठू कह कर उन्हें जनता की दृष्टि में गिराने की चेष्टा की और यह विल्कुल भूल गये कि युद्ध के पहिले भाग में जब कि कांग्रेस केवल भाषण स्वतंत्रता की मांग कर के व्यक्तिगत सत्याग्रह के वहाने आन्दोलन को टाल रही थी, तव देश का एक-एक कम्युनिस्ट युद्ध विरोधी सामूहिक आंदोलन में भाग लेने के अपराध में जेलों में वन्द कर दिया जा चुका था। युद्ध के दूसरे भाग में भी कम्युनिस्ट उसी उद्देश्य का समर्थन कर रहे थे जिस की घोषणा स्वयं कांग्रेस कर रही थी। अन्तर यह था कि कम्युनिस्ट आग्रह कर रहे थे कि स्वराज्य मुस्लिमलीग की प्रतिद्वन्दिता में अंग्रेजों का पक्षपात मांगने से नहीं मिलेगा और कांग्रेस को प्रजातंत्रवाद और मित्रराष्ट्रों से सहानुभूति प्रकट करने और भारत की रक्षा के लिये प्रतिज्ञा

करने पर अपने उद्देश्य और प्रतिज्ञा की घोषणा के विरुद्ध नीति पर नहीं चलना चाहिये ।

× × ×

अगस्त क्रान्ति

८ अगस्त १९४२ को कांग्रेस कार्यकारिणी ने सार्वजनिक और व्यापक युद्ध विरोधी असहयोग आंदोलन की घोषणा कर दी । इस आन्दोलन के लिये किसी भी प्रकार की रचनात्मक तैयारी पहले से नहीं की गई थी । भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने जो चेतावनी दी थी वह ठीक साबित हुई । ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस के सभी नेताओं को एक ही हल्ले में समेट कर जेलों में बन्द कर दिया । मुस्लिम-लीग के नेताओं ने मुस्लिम जनता को कांग्रेसी राज स्थापित करने के आंदोलन से दूर रहने के लिये ही नहीं बल्कि उस का विरोध करने के लिये पुकारा । मुख्यतः हिन्दू जनता ने सरकार के इस दमन के विरुद्ध प्रदर्शन और आंदोलन आरंभ किया जो न तो संगठित थी और न अहिंसा के तकल्लुफ को निभा रही थी । स्थान स्थान पर तोड़-फोड़ से राष्ट्रीय (सरकारी) सम्पत्ति का नाश किया जाने लगा । कुछ दिन के लिये देश में यातायात के साधनों तथा शासन की अच्छी खासी अव्यवस्था हो गयी । इसी आन्दोलन को अगस्त ४२ की क्रान्ति के नाम से याद किया जाता है ।

उस समय यदि एशिया के भिन्न-भिन्न भागों में अपनी राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिये लड़ने वाली प्रजातंत्रवादी सेनाओं ने जापानी साम्राज्य विस्तार की कमर न तोड़ दी होती तो जापान को आसाम-बंगाल के रास्ते भारत में घुस आने में अधिक कठिनाई न होती । ब्रिटिश सरकार ने जनता के असंगठित और नेतृत्वहीन आंदोलन को बर्बरता और निरंकुश अत्याचार से दबा दिया । कांग्रेस की मतानुयायी जनता और ब्रिटिश-सरकार के संघर्ष में सरकार ने कांग्रेस विरोध की भावना से प्रेरित मुस्लिम-लीग पर विश्वास रखने वाली मुस्लिम जनता का भी खूब उपयोग किया ।

जेलों में बैठे कांग्रेस नेताओं ने इस "अगस्त क्रांति" का कोई उत्तरदायित्व अपने कन्धों पर लेने से उसी समय इंकार कर दिया था । गांधी जी ने १४ अगस्त १९४२ को जेल से वाइसराय को पत्र लिख कर अपने और कांग्रेस

नेताओं के गिरफ्तार कर लिए जाने की शिकायत यों की थी:—"सरकार को कम से कम यह तो देखना चाहिए था कि मैं सार्वजनिक असहयोग का कार्य-क्रम किस रूप में आरम्भ करता हूँ। मैंने सार्वजनिक रूप से यह घोषणा कर दी थी कि कोई भी क्रियात्मक कदम उठाने से पहिले आपको एक पत्र लिखूंगा।" इस पत्र से यह स्पष्ट है कि अगस्त-क्रान्ति आरम्भ करने का श्रेय या उत्तरदायित्व गांधी जी अथवा कांग्रेस को नहीं था। सितम्बर २३, १९४२ को गांधी जी ने वाइसराय को फिर पत्र लिख कर इस बात पर जोर दिया:— "सरकार ने कांग्रेस नेताओं को एक दम पकड़ कर जनता को उत्तेजित कर दिया और सर्वसाधारण आपे से बाहर हो गये। मेरा विश्वास है कि विध्वंस का उत्तरदायित्व कांग्रेस पर नहीं परन्तु सरकार पर है।"

गांधी जी जब तक जेल में रहे अगस्त-क्रांति की जिमेदारी लगातार सरकार के द्वारा जनता के उत्तेजित कर दिये जाने पर डालते रहे। यही बात गांधी जी ने कांग्रेस को निर्दोष प्रमाणित करने के लिये १५ जुलाई १९४२ को इंगलैंड के इंडिया आफिस की शिकायत के रूप में लिखी और उन्होंने अपनी बात के प्रमाण स्वरूप में आंध्र-कांग्रेस कमेटी की गश्ती चिट्ठी का भी जिक्र किया जिस में नेता (गांधी जी) की अनुपस्थिति में किसी भी प्रकार का आंदोलन न चलाने की आज्ञा कांग्रेस जनों को दी गई थी।

कम्युनिस्ट पार्टी इस समय में युद्ध-विरोधी आंदोलन में सहयोग न देकर सरकार द्वारा पैदा हो गई उत्तेजना से बचे रहने का प्रचार जनता में कर रही थी। कांग्रेस ने पार्टी के इस काम को देशद्रोह और कांग्रेस द्रोह का आन्दोलन बता दिया। जेल से छूटने पर कांग्रेस के दूसरे नेताओं पं० नेहरू, सरदार पटेल और पं० गोविन्दवल्लभ पन्त ने भी २१ सितंबर १९४५ को अगस्त-क्रांति के के सम्बन्ध में यह सार्वजनिक घोषणा की, "अखिल भारतीय कांग्रेस-कार्य कारिणी की ओर से आंदोलन चलाने का कोई अधिकार पूर्ण आदेश नहीं दिया गया था।" परन्तु १९४५ में आंदोलन के समाप्त हो जाने पर जब दुबारा नये चुनाव का अवसर आया, पं० जवाहरलाल जैसे नेताओं ने भी दिल्ली में लाल-किले के मैदान से छाती ठोंक कर "अगस्त क्रांति" का श्रेय अपनाना शुरु कर दिया और "अगस्त क्रांति" या युद्ध विरोधी आंदोलन में भाग न लेने वालों और उस का विरोध करने वाले लोगों (कम्युनिस्टों) को अनुशासन के आधार पर देशद्रोही कह कर कांग्रेस से निकाल दिया।

कांग्रेस नेताशाही की भावना में विदेशी शासन से भारत की मुक्ति का क्या रूप था, यह बात एक बार फिर स्पष्ट होने का अवसर आया। जनता में असंतोष और ब्रिटिश शासन से गुणा के परिणाम स्वरूप १९४६ फरवरी में भारतीय-नाविक-सेनाओं में एक विद्रोह फूट उठा। बंबई, करांची और मद्रास में यह विद्रोह एक साथ हुए और दूसरी सेनाओं ने भी इस विद्रोह की सहानुभूति में प्रदर्शन किये। बम्बई तथा दूसरे बंदरगाहों में जनता ने ब्रिटिश शासन व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह करने वाले इन सिपाहियों का पूरा साथ दिया। भारतीय नाविकों के इस विद्रोह को उन की निजी मामूली शिकायतों के कारण ही मान लेना उस के साथ अन्याय है। उन्होंने अपने विद्रोह की घोषणा जिस रूप में की उस में विदेशी राज-विरोधी राष्ट्रीय भावना ही प्रमुख थी। उन लोगों के नारे थे "जयहिंद" "इंकलाब-जिंदाबाद" "हिन्दू-मुस्लिम एक हों" "ब्रिटिश साम्राज्यवाद का नाश हो" "आजाद हिंद सैनिकों और राजनैतिक बंदियों को आजाद करो" और "इंडोनेशिया से भारतीय सेना वापिस बुलाओ?" यह नारे इन सिपाहियों की राष्ट्रीय चेतना और राष्ट्रीय स्वतंत्रता की भावना के प्रमाण थे। ब्रिटिश साम्राज्यशाही के विरुद्ध इस विद्रोह में इन सैनिकों ने कांग्रेस, मुस्लिमलीग और हँसिया-हथौड़े के लाल झंडे को ब्रिटिश साम्राज्यशाही के विरुद्ध राष्ट्रीय भावना के प्रतीक मान कर एक साथ खड़ा किया था।

ऐसी परिस्थिति में जब कि देश की पूंजीवादी श्रेणी के राजनैतिक नेता ब्रिटिश साम्राज्यशाही के मुकाबले में कोई संयुक्त मोर्चा बना सकने में असमर्थ थे, इन सिपाहियों का राष्ट्रीय एकता की भावना को महत्व देना एक विशेष राजनैतिक सूझ का काम था। विस्मय की बात यह है कि १९४२ और १९४३ में ब्रिटिश साम्राज्यशाही के विरुद्ध इस विद्रोह में साथ देना उचित नहीं समझा। कारण स्पष्ट है। साम्राज्यशाही से इस प्रकार ब्रिटिश शासन का अधिकार छीना जाने पर यह अधिकार सर्वसाधारण जनता के हाथ में पहुँच जाता। कांग्रेस का यह लक्ष्य कभी नहीं रहा था। कांग्रेस का लक्ष्य था, पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था को विचलित किये बिना, केवल समझौते द्वारा ब्रिटिश साम्राज्यशाही की आधीनता में अपनी सत्ता कायम करना।

कांग्रेस के पूंजीवादी नेतृत्व ने अपने श्रेणीगत स्वार्थ पर देश की मुक्ति के अवसर को बलिदान करके इस अवसर पर भी देश के नाविक सैनिकों और जनता की भावना विरुद्ध ब्रिटिश साम्राज्यशाही का ही साथ दिया। जिस

समय बम्बई में कम्युनिस्ट पार्टी ने नाविकों के विद्रोह की सहानुभूति में हड़ताल के लिए जनता को पुकारा कांग्रेस ने इस हड़ताल का विरोध किया। कांग्रेस की ओर से बम्बई की जनता को विद्रोहियों से सहानुभूति प्रकट न करने का उपदेश देने सरदार पटेल बम्बई पहुँचे। जिस समय नाविक विद्रोही ब्रिटिश जंगी जहाजों की गोलाबारी का मुकाबला कर रहे थे और अम्बाला, देहरादून आदि में भी सेनाओं में विद्रोह फूट रहा था, पटेल बम्बई के नाविकों को हथियार डाल देने का उपदेश दे रहे थे। सरदार पटेल के उपदेशों के बावजूद बम्बई की जनता ने कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में पूरी हड़ताल की और विद्रोही नाविकों को सहायता भी दी।

सरदार पटेल ने नाविकों को यह आश्वासन और वादा दिया कि कांग्रेस इस बात का पूरा यत्न करेगी कि आत्मसमर्पण करने पर विद्रोहियों को किसी प्रकार की सजा न दी जाय। मुस्लिम-लीग ने भी इसी प्रकार का वायदा किया। कांग्रेस और लीग जो भारत की हिन्दू और मुस्लिम पूंजीपति श्रेणियों की प्रतिद्वंदिता की प्रतिनिधि थीं, देश की सर्वसाधारण जनता के संयुक्त मोर्चे और संयुक्त प्रयत्न द्वारा देश का शासन ब्रिटिश साम्राज्यशाही से छीन लेने की विरोधी थीं वे दोनों ही ब्रिटिश शासन की व्यवस्था की बोतल को क्रांति द्वारा टूट जाने की आशंकापूर्ण स्थिति में नहीं डालना चाहती थीं। वे दोनों इस बोतल का डाट ब्रिटिश शासन के सहयोग से खोल कर शासन का अधिकार अपने-अपने हाथ में ले लेना चाहती थीं। देश की प्रमुख राजनैतिक शक्तियों को अपना विरोध करते देख नाविकों ने हथियार डाल दिये। हथियार डालते समय भी उन्होंने यही घोषणा की कि वे ब्रिटेन के सामने नहीं परन्तु हिन्दुस्तानियों के सामने आत्मसमर्पण कर रहे हैं। हिन्दुस्तानियों का अर्थ था:— ब्रिटेन के रक्षक कांग्रेस और लीग!

नाविकों और सैनिकों के इस विद्रोह और इस विद्रोह के प्रति सर्वसाधारण जनता के पूर्ण सहयोग से मुस्लिम लीग का आशंकित हो जाना और इस के विरुद्ध ब्रिटिश शासन का साथ देना तो समझ में आता है क्योंकि मुस्लिम लीग का अस्तित्व मुख्यत: साम्प्रदायिक विरोध की भावना पर निर्भर था परन्तु कांग्रेस के नेताओं में, जिस के कार्यक्रम का एक मुख्य लक्ष्य हिन्दू-मुस्लिम एकता था गांधी जी से लेकर मौलाना आज़ाद तक सभी नेताओं ने इस विद्रोह के समय हिन्दू-मुस्लिम एकता के इस प्रदर्शन के प्रति आशंका प्रकट

की। गांधी जी ने तो इस एकता को 'अपवित्र एकता' का नाम देकर इस की निन्दा की। इस सम्बन्ध में गांधी जी का वक्तव्य था "यदि एकता चोटी से एड़ी तक हो जाती तो मैं इस का कुछ अर्थ समझ सकता था। इस का अर्थ होता भारत को विध्वंस के हाथों सौंप देना। यह सब देखने के लिये मैं सवा सौ वर्ष की आयु तक जीवित नहीं रहना चाहता।"

युद्ध के समय कांग्रेस की मांगों को ठुकरा देने के लिये ब्रिटेन हिन्दुओं और मुस्लिमों के परस्पर विरोध का बहाना बता रहा था। सर्वसाधारण हिंदू-मुसलमानों में कितना पारस्परिक भेद और प्रतिद्वंदिता थी, यह नाविक विद्रोह की घटनाओं ने साफ कर दिया। वास्तव में विरोध दोनों सम्प्रदायों की नेता पूंजीपति श्रेणी का ही उत्पन्न किया हुआ था। कांग्रेस और लीग के नेता हिंदू-मुस्लिम एकता के लिए कितने उत्सुक थे, यह भी इस से स्पष्ट है कि हिंदू-मुसलमानों को पारस्परिक भेद भुला कर विदेशी शत्रु के सामने संयुक्त मोर्चे पर एक साथ खड़े होते देख दोनों ही आशंकित हो उठे और दोनों में से किसी ने भी इस एकता का स्वागत नहीं किया। इस एकता का स्वागत किया केवल भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने, जिस का झंडा इस समय जनता द्वारा उठाये गये लीग और कांग्रेस के झंडों के साथ नाविकों का उत्साह बढ़ा रहा था।

"अगस्त क्रांति" के विफल प्रयत्नों के बाद १९४५-४६ में जनता और भी अधिक असंतुष्ट अवस्था में थी। युद्ध के बाद ब्रिटिश साम्राज्यशाही भी यह अनुभव कर चुकी थी कि केवल शस्त्र-शक्ति और दमन के पुराने तरीके से भारत में अपना शासन बनाये रखना उन के लिये संभव नहीं। युद्ध के समय भारतीय सैनिकों, आजाद हिन्द सेना और फिर १९४६ के नाविक विद्रोह के रूप में ब्रिटिश साम्राज्यशाही के विरुद्ध लड़ने के लिये तैयार हो जाने के उदाहरण ने यह स्पष्ट कर दिया था कि भारत को ब्रिटिश साम्राज्यशाही के बंधन में रखने का मुख्य साधन भारतीय सेनाएँ भी अवसर आते ही ब्रिटिश शासन पर चोट करने के लिए तैयार हो सकती हैं। ब्रिटिश शासन की मुख्य सहायक अंधी राजभक्ति, राष्ट्रीय चेतना के कारण भारतीय सेना में भी समाप्त हो चुकी थी। परन्तु कांग्रेस और लीग ने भारतीय सैनिकों की ब्रिटिश शासन से विरोध की भावना का कभी स्वागत नहीं किया। कांग्रेस के हाथ में शासन की बागडोर आजाने पर आज़ाद हिन्द सेना के साथ जैसा दुर्व्यवहार हुआ और ब्रिटिश शासन के फ़र्मांबरदार गुलाम बने रहने वाले सैनिकों का जैसा आदर

हुआ उस से यह स्पष्ट हो गया कि कांग्रेस और लीग नेता ब्रिटिश शासन व्यवस्था के मूल आधार में ही अपना कल्याण समझते थे।

१९४६ में देश आर्थिक संकट के कारण किस तरह उबल रहा था और ब्रिटिश शासन के लिए देश में व्यवस्था बनाए रखना कितना कठिन हो रहा था, यह बात उस समय देश में चलने वाले मजदूर और किसान आंदोलन से स्पष्ट हो गयी। १९४५ में ७ लाख ४७ हजार मजदूरों ने हड़तालों में भाग लिया था और १९४६ में १९ लाख ६१ हजार मजदूरों ने। शोषण की व्यवस्था और अपने संकट के विरोध में मजदूरों की यह चेतना बहुत तेज़ी से बढ़ती जा रही थी। १९४७ के लगभग आधे वर्ष में ही १३ लाख २३ हजार मजदूर हड़तालों में भाग ले चुके थे।

देश के देहातों में किसानों का आन्दोलन भी शोषण से मुक्ति के लिए स्थानीय समस्याओं के आधार पर (बंगाल में तिभागा, यू० पी० में जमींदारी के खिलाफ़ और मद्रास में जोतदारी के खिलाफ़) इस परिमाण में उठ रहा था कि अंग्रेज सरकार के लिये उस पर नियंत्रण रख सकना संभव नहीं रहा था। उस समय इन संघर्षों के सम्वन्ध में कांग्रेस के प्रधान मौ० आज़ाद ने यह वक्तव्य देकर चिंता प्रकट की थी: "इस समय हड़तालों और शासन की अवज्ञा का कोई मौका नहीं है। इस अस्थायी विदेशी शासन से लोहा लेने का कोई कारण दिखाई नहीं देता। यह तो कुछ ही समय के लिये है।"

देश की इस असंतुष्ट परिस्थिति से ब्रिटिश साम्राज्यशाही कैसे परिचित थी, इसे पी. जे. ग्रिफ्यस ने अपने २४ जून १९४६ के लंदन में दिये गये भाषण से स्पष्ट कर दिया था :—"हम में से प्रायः सभी लोग जानते थे कि भारत में कैबिनेट मिशन के आने से पूर्व भारत की जनता क्रांति के कगार पर खड़ी हुई थी। भारत में कैबिनेट मिशन के आने से यदि इस क्रांति की संभावना दूर नहीं हो गई तो कुछ समय के लिए टल तो अवश्य गई.......।"

मार्च ५, १९४७ को स्टैफोर्ड क्रिप्स ने भी भारत के सम्वन्ध में ब्रिटेन की नयी नीति की सफाई देते हुए कह दिया था कि:—"ब्रिटेन के सामने दो ही रास्ते हैं। यदि हम भारत पर अपना शासन कायम रखना चाहते हैं तो हमें भारत में अपने शासन को सुदृढ़ बनाने के लिए अपनी नौकरशाही की संख्या को बहुत अधिक बढ़ाना पड़ेगा और भारत पर शस्त्र-बल से प्रभुत्व रखने के लिए एक बहुत बड़ी ब्रिटिश सेना भी वहाँ भेजनी पड़ेगी। दूसरा

रास्ता यह है कि हम यह स्वीकार कर लें कि हम यह सब कर सकने की अवस्था में नहीं हैं।"

ब्रिटेन ने यह अनुभव कर लिया कि युद्ध के बाद की परिस्थितियों में शस्त्र-शक्ति से भारत पर अधिकार जमाए रखना उन के लिए सम्भव नहीं है। ब्रिटेन के सामने समस्या थी कि अपनी साम्राज्यशाही शक्ति के मूल केन्द्र भारत के ऊपर अपने नियंत्रण को किसी दूसरे साधन से बनाए रखे। भारतीय जनता के विरोध से बचने का केवल एक ही साधन सम्भव था:—देश के राजनैतिक मत के नेताओं का सहयोग पाने की चेष्टा करना। इस उद्देश्य से कैबिनेट मिशन भारत में आया। ब्रिटेन भारत को यथा सम्भव पराधीन और असहाय परिस्थिति में रख कर ही अपने हाथ में भारतीय जनता के शोषण का अवसर रख सकता था। इस उद्देश्य से कैबिनट मिशन ने अपनी पुरानी साम्राज्यवादी चाल "फूट डाल कर राज करो" को फिर अपना मुख्य शास्त्र बनाया मुस्लिम-लीग और कांग्रेस के प्रतिद्वन्दी नेताओं को एक दूसरे के विरोध में अपना सहायक और निर्भर बनाने की चाल चली गई।

मौजूदा विधान के अनुसार हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के रूप में दो स्वतंत्र देशों का बन जाना, कांग्रेस और लीग की विजय थी या साम्राज्यशाही की कूटनीति की विजय? इस बात को स्पष्ट करने के लिए ब्रिटेन के प्रधान मंत्री एटली के वक्तव्य की याद दिला देना सहायक होगा। अपनी नीति की सफाई देने के लिये सितम्बर १९५० में ब्राइटन में भाषण देते हुए उन्होंने कहा था—"कम्युनिजम अपना प्रभाव अनेक गुप्त तरीकों से संसार भर में फैला रहा है। एशिया और अफ्रीका में कम्युनिजम के इस प्रभाव को रोकने के लिये हम भारत, पाकिस्तान और लंका को स्वतंत्रता देकर उन्हें कम्युनिजम के विरुद्ध अपने कामनवेल्थ में साझीदार और सहायक बना लिया है।" यह वक्तव्य स्पष्ट कर देता है कि भारत का यह रामराज्य और पाकिस्तान की इस्लामी सल्तनत लीग और कांग्रेस की विजय नहीं बल्कि ब्रिटिश कूटनीति से हिन्द और पाकिस्तान की पूंजीवाद और साम्राज्यवाद की समर्थक श्रेणियों का ब्रिटिश साम्राज्यवाद से समझौता था। इस समझौते से हिन्द और पाकिस्तान की पूंजीपति श्रेणी के स्वार्थ पूरे हो रहे हैं और पूंजीवाद से शोषित जनता के हित इस के लिये बलिदान कर दिये गये हैं।

उपरोक्त ढंग की स्वतंत्रता इस देश को देने के लिये ब्रिटेन ने कांग्रेस और

लीग से सौदा पटाने की बात चीत आरम्भ की। ब्रिटेन द्वारा गढ़ी गई और हिन्द तथा पाकिस्तानी पूंजीपति श्रेणी द्वारा स्वीकार की गई इस स्वतंत्रता का प्रयोजन इस देश में पूंजीवाद और साम्राज्यवाद के पाँव मजबूत कर अपने स्वार्थ की रक्षा करना ही था। ब्रिटेन से पक्षपात पाने के लिये कांग्रेस और लीग में होड़ होने लगी। ब्रिटेन ने इस देश की जनता को पढ़ाया कि देश के हिन्दू और मुसलमानों की साझी शत्रु विदेशी साम्राज्यशाही नहीं बल्कि हिन्दू, मुसलमान ही एक दूसरे के शत्रु हैं। लीग मुद्दत से इसी नीति पर अपना अस्तित्व कायम किये थी। १९४७ में मेरठ कांग्रेस के मौके पर सरदार पटेल ने भी मुसलिम लीग को तलवार की धमकी देकर ब्रिटेन की इस कूट नीति में सहयोग दे दिया। कांग्रेस और लीग की होड़ अर्थात् हिन्दू-मुसलिम का वैमनस्य बढ़ा। उस के परिणाम में १९४७ के अभूतपूर्व हिन्दू-मुस्लिम दंगे हुए।

भारत के राजनैतिक इतिहास में यह बात ध्यान देने योग्य है कि विदेशी शासन के विरुद्ध सर्वसाधारण जनता के संघर्ष का अवसर जब भी आया, हिंदू-मुस्लिम वैमनस्य और भेद मिट गया और जब भी ब्रिटिश शासन से वैधानिक समझौते द्वारा देश की पूँजीपति श्रेणी के हाथ में शासन का अधिकार सौंपे जाने का सौदा चला, हिन्दू-मुस्लिम भेद विराट रूप में प्रकट होता रहा और वैधानिक रूप से सत्य-अहिंसा की विजय द्वारा पाये गये वैधानिक रामराजी स्वराज्य ने देश को हिन्दू-मुस्लिम राज्यों के रूप में पृथक-पृथक बाँट दिया।

मुस्लिम लीग का तो आधार ही मुस्लिम पूंजीपति वर्ग का कांग्रेस पर अधिकार जमाये हिन्दू पूंजीपति वर्ग से प्रतिद्वंदिता था। इसलिए कांग्रेस के विरोध में अपनी स्वतंत्र सत्ता बनाए रखने के लिए मुस्लिम-लीगी नेता ब्रिटेन को सहयोग देने की नीति पर चलते आये थे परन्तु कांग्रेस नेताओं ने किस सिद्धांत के आधार पर, ब्रिटेन द्वारा अपना अधिकार स्वीकार किये जाने के लिये देश के बटवारे को स्वीकार कर लिया? देश का बँटवारा कांग्रेस की अनुमति से ही हुआ है, इस बात से कांग्रेस इनकार नहीं कर सकती। कांग्रेस पूरे देश की आजादी को अपना ध्येय मानती थी। साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से देश के भिन्न भागों और प्रजा में भेद करना कांग्रेस के मौलिक सिद्धांत के विरुद्ध था। लेकिन ब्रिटेन भारतीय पूंजीपतियों को पूरे देश के साधन सम्भाल समेट कर अपना सबल प्रतिद्वन्दी बनने का मौका नही देना चाहता था।

ब्रिटेन ने हिन्दुस्तान को एक सबल शक्ति न रहने दे कर हिन्दुस्तान और

पाकिस्तान के रूप में दो कमजोर देश बना दिये। कांग्रेस के पूंजीवादी नेताओं के सम्मुख समस्या थी:—या तो ब्रिटेन की इस शर्त को मानें या सर्वसाधारण को विदेशी व्यवस्था के विरुद्ध अपनी लड़ाई लड़ लेने दें। जनता को अपनी लड़ाई लड़ने देने का अनिवार्य अर्थ होता कि देश की पूंजीपति व्यवस्था स्वयं भी सर्वसाधारण की शोषण विरोधी भावना का शिकार हो जाती। इसलिए कांग्रेस के नेताओं ने कांग्रेस के घोषित लक्ष्य को कुर्बान करते हुए ब्रिटेन की संरक्षता में शासन का अवसर और अधिकार पाने के लिये हाथ फैला दिये।

× × ×

रामराज्य का रूप

१९४७ अगस्त १५ को ब्रिटिश साम्राज्यशाही ने भारत को भारत और पाकिस्तान में बांट कर इस भूखण्ड का शासन भारत और पाकिस्तान की पूंजीपति श्रेणियों की प्रतिनिधि संगठनों कांग्रेस और मुस्लिम लीग के हाथ सौंप दिया। ब्रिटिश सरकार ने क्यों और कैसी परिस्थितियों से मजबूर होकर भारत का शासन कांग्रेस और मुस्लिम लीग के प्रतिनिधियों के हाथ में सौंपा यह इस पुस्तक के आरम्भ में मि० एटली के भाषण के उद्धरण से स्पष्ट किया जा चुका है। कांग्रेस ने इस घटना को अपनी विजय और अहिंसात्मक क्रान्ति का नाम देकर इस का सेहरा गांधीवाद की अहिंसा की नीति के सिर बांध दिया। पं० जवाहरलाल नेहरू इस अहिंसात्मक क्रांति का ढिंढोरा संसार भर में पीटते रहे हैं। और अब भी संसार को इस से चमत्कृत करने की आशा रखते हैं।

ब्रिटिश साम्राज्य की सरकार से भारत का शासन हस्तांतरित होना या कांग्रेस को स्वराज्य मिलना और पाकिस्तान का जन्म और पाकिस्तान में मुस्लिम लीग के शासन की स्थापना एक ही घटना के परिणाम हैं। कांग्रेस इस घटना को अपनी विजय और अहिंसात्मक क्रांति कहती है। मुस्लिम लीग इसे इस्लाम की विजय और कांग्रेसी हिन्दू शोषकों की पराजय कहती है। १९४७ में कांग्रेस के हाथ भारत का शासन आ जाने को चाहे कांग्रेस की

अहिंसात्मक क्रान्ति की विजय कहा जाय या ब्रिटिश शासन का भारत को अपने शासन में बांधे रखने को अक्षम होकर अपनी स्थिति सम्भालने के लिए उन की नीति में परिवर्तन कहा जाय, इस घटना का परिणाम भारत में कांग्रेस का शासन कायम होना या रामराज्य की स्थापना माना ही जायगा।

रामराज्य की स्थापना के पश्चात् कांग्रेस ने अपनी उन सब घोषणाओं को भुला दिया जिन्हें वह जनता का समर्थन और सहायता पाने के लिये किया करती थी। साम्राज्यवादी नीति के विरोध की बात भुला कर उस ने ब्रिटिश कामनवेल्थ में ही रहना स्वीकार कर लिया। पैदावार के मुख्य साधनों और उद्योग धंधों के राष्ट्रीयकरण की प्रतिज्ञाओं को भुला कर उस ने देश की मालिक श्रेणी को खुली लूट का अवसर दे दिया। इस देश की पूंजीपति श्रेणी के सामने, अपने भविष्य की महत्त्वकांक्षाओं के विचार से इस राष्ट्र को आर्थिक रूप से विकसित करने और अपने पांव पर खड़े करने का भी लक्ष था। इस लक्ष को पूरा करने के लिये परम्परागत चले आये पूंजीवादी तरीके अर्थात् निजी स्वामित्व में उद्योग धंधों को अधिक से अधिक मुनाफे कमा कर अन्य उद्योग धंधों के विस्तार और विकास का मार्ग अपनाया गया और इस काम को पूरा करने के लिये पूंजीवादी राष्ट्रों ब्रिटेन और अमेरिका की ही सहायता का भरोसा भी किया गया।

१९५५ तक कांग्रेसी शासन की नीति का परिणाम यह हुआ कि इस देश के पूंजीपतियों के मुनाफे तो ३१८ करोड़ से ५११ करोड़ पर पहुंच गये। परन्तु देश के सर्वसाधारण और किसान-मजदूरों को इस समृद्धि का क्या भाग मिला? मजदूरों और नौकरी पेशा लोगों की आमदनी में इस समय में २३२ करोड़ से २५० करोड़ की ही वृद्धि हुई। इस से पूर्व मालिक श्रेणी राष्ट्रीय आय का ५७ प्रतिशत पा रही थी नई पाई स्वतंत्रता में उन्होंने राष्ट्रीय आय का ६७ प्रतिशत पाया और श्रमिक वर्ग जो पहले राष्ट्रीय आय का ४२ प्रतिशत पा रहे थे, इस समय उन्हें ३३ प्रतिशत ही मिल सका। यह था गांधीवाद के अनुसार दीनों का पालन और प्रजातंत्र का दम्भ करने वाले रामराज्य का पहला प्रभाव। रामराज्य की स्थापना से जनता पर तो नित्य नये करों का बोझ बढ़ता गया परन्तु मालिक श्रेणी के मुनाफे पर लगाये जाने वाले करों का अनुपात घटता गया। रामराजी सरकार को आशा थी कि यथेष्ट धन बटोर लेने पर मालिक श्रेणी राष्ट्र के औद्योगिक विकास द्वारा

बेकारी दूर करने और जनता के जीवन का स्तर सुधारने में सहायक होगी, रामराज के जादू से सेवक श्रेणी भी संतुष्ट रहेगी और मालिक श्रेणी का प्रभाव भी अक्षुण्ण रहेगा।

रामराज्य के पहले चरण में सर्वसाधारण के जीवन का स्तर ऊंचा उठने की अपेक्षा गिरता गया। वेतन और मजदूरी बढ़ाने का उपाय नहीं था परन्तु पदार्थों के मूल्य मुनाफा बढ़ाने की छूट के कारण बढ़ते जा रहे थे। यहां तक कि शिक्षा का मूल्य भी रामराजी सरकार ने इतना बढ़ा दिया कि वह सर्वसाधारण के लिए अप्राप्य हो गयी है। ऐसी अवस्था में किसानों मजदूरों और विद्यार्थियों में असंतोष फूटना स्वाभाविक ही था। देश का शायद ही कोई भाग और नगर ऐसा बचा होगा जहां इस असंतोष के कारण प्रदर्शन नहीं हुए और जहां सरकार की ओर से लाठी और गोली का उपयोग निरंकुश रूप में नहीं किया गया। गांधीवादी रामराजी सरकार प्रेम से शत्रु के हृदय परिवर्तन की नीति को भूल गई। अहिंसा की पुजारी सरकार के पास इस असंतोष का उपाय था घोर दमन। साधारण और सशस्त्र पुलिस की संख्या खूब बढ़ाई गई। अहिंसात्मक क्रांति का दावा करने वाले रामराजी सरकार ने नागरिक स्वतंत्रता का दमन करने वाले ऐसे कानून बना लिये जिन के आगे अंग्रेज सरकार का रौलेट कानून भी निस्तेज हो गया। यह है रामराज की शांति का भीतरी रूप।

जैसे रामराजी सरकार ने औद्योगीकरण द्वारा बेकारी दूर कर राष्ट्र को आत्म निर्भर बनाने के लिये देश की मालिक श्रेणी का भरोसा किया अथवा उन्हें ही सबल बनाने की नीति अपनायी वैसे ही देश के किसानों की अवस्था सुधारने के लिये उन्होंने जमीन्दारी उन्मूलन का जो नाटक किया उस का परिणाम भूमिहीन किसानों को भूमि मिलना या सामूहिक कृषि क्षेत्रों की स्थापना न होकर ऐसे भूमिधर या भूमिपति किसानों की श्रेणी बन जाना हुआ जो भविष्य में उत्पादन के साधनों पर व्यक्तिगत स्वामित्व की प्रणाली के समर्थक रहें। परम्परागत जमीन्दारों को भी निजी कृषि के लिये कुछ अधिक भूमि दी गई और गरीब जनता द्वारा करों के रूप में उगाहा जाने वाला धन उन्हें बहुत बड़ी मात्रा में मुआवजे के रूप में दिया गया। यह जमीन्दार भूमिहीन किसानों से खेती कराने वाले समन्त स्वामी की अवस्था से बदल कर यंत्रों से खेती करने वाले पूंजीवादी भू स्वामी बन गये।

जमीन्दारी प्रथा उन्मूलन का प्रभाव किसानों की बेकारी या भूमिहीन किसानों की संख्या घटाना नहीं बल्कि उन की संख्या बढ़ाना ही हुआ जमीन्दारी प्रथा के उन्मूलन की सम्भावना देखते ही जमीन्दारों ने किसानों को बेदखल कर अधिक से अधिक भूमि को निजी जोत की भूमि में मिला लिया। भूमिहीन किसानों को भूमि देने के लिये का उपाय सरकार ने अविष्कार किया है वह है सरकारी संत विनोवा भावे का जमीन्दारों से अनुपयोगी भूमि का दान एकत्र कर भूमिहीन किसानों को धरती बांटना। इस उपाय से कितने भूमिहीन किसानों की समस्या सुलझी है, इस का लेखा-जोखा इतने वर्षों तक भी सरकार ने प्रकाशित नहीं किया।

पूंजीपति श्रेणी द्वारा नियंत्रित कांग्रेस के नेता देश में पूंजीपति श्रेणी के स्वत्वों और स्वार्थों की रक्षा तो चाहते ही हैं परन्तु वे देश का आर्थिक विकास कर अधिक मुनाफे कमा सकनें के लिये जनता की क्रय शक्ति को बढ़ाया और देश को आत्मनिर्भर भी बनाना आवश्यक समझते हैं। वे यह भी समझते हैं कि पूंजीवाद की रक्षा यदि करनी है तो सर्वसाधारण के जीवन की अवस्था भी कम से कम सहने योग्य तो हो। इस के अतिरिक्त वे विदेशी शासन से प्राप्त हुई स्वतंत्रता को हाथ से निकल जाने देना नहीं चाहते। कांग्रेस के नेताओं को कुछ ही वर्षों के अनुभव से यह समझ में आ गया कि देश के पूंजीपतियों को दी गई मुनाफा कमाने की छूट उन की तिजोरियों को तो भर रही है परन्तु देश उस से आत्मनिर्भर नहीं बन रहा। पूंजीपति की प्रवृति देश में मौलिक उत्पादन की शक्ति बढ़ाने में अपनी पूंजी लगाने की अपेक्षा चालू बाजार से मुनाफा कमाने की ओर ही है। उदाहरणतः पूंजीपति देश की उत्पादक शक्ति को बढ़ाने के लिए विद्युत शक्ति उत्पन्न करने में अथवा, कपड़ा बनाने की मशीनें को बनाने के लिये अथवा अन्य मशीनों को बनाने वाली मशीनों को बनाने में अपनी पूंजी नहीं लगाना चाहते। मूल उत्पादक शक्ति को देश में बढ़ाने के लिए व्यक्तिगत प्रयत्न न प्रर्याप्त है न विश्वास योग्य। उस के लिए राष्ट्र को ही प्रयत्न करना पड़ेगा। इस के अतिरिक्त कांग्रेस नेताओं को यह भी स्वीकार करना पड़ा कि अपने मुनाफे का ही साम्राज्य प्रसार का लक्ष मानने वाले ब्रिटेन और अमरीका के पूंजीपति भारत का आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हो जाना अपने स्वार्थ के अनुकूल नहीं समझते। वे भारत को उसी प्रकार की और उसी सीमा तक

सहायता देने के लिये तैयार हैं जिस से भारत उन के व्यवसायों के लिये लाभदायक बजार बन सके। इस के अतिरिक्त ब्रिटेन और अमरीका जो भी आर्थिक और औद्योगिक जानकारी की सहायता देने के लिये तैयार हैं उस के मूल्य में यह लोग भारत को राजनैतिक रूप से परवश बना कर अपने सामरिक गुट्ट का अंग बनाए बिना नहीं छोड़ेंगे।

तनिक भी राजनैतिक सूझ-बूझ रखने वाले लोग इस बात से इनकार नहीं कर सकते कि अमरीका और ब्रिटेन की इस सामरिक गुट्टबाजी का प्रयोजन उपनिवेशों पर अपना अधिकार जमाये रखना और दूसरे देशों को अपनी इच्छा का दास बनाना ही है। सामरिक गुट्ट बनने का प्रयोजन है युद्ध की ललकार से दूसरों का दमन करना और इन गुट्टों के पर्याप्त रूप से सबल समझ लेने पर किसी भी समय युद्ध के ध्वंस का आरम्भ।

भारतीय सरकार यह खूब समझती है कि किसी भी विश्व-व्यापी युद्ध का परिणाम न केवल इस देश के आर्थिक निर्माण में बड़ी भारी बाधा ही होगा बल्कि यह देश भी युद्ध में घसीटा जाकर ध्वंस में आहुति बनेगा। इसलिए भारतीय सरकार ने, ब्रिटिश कामनवेल्थ का भाग होकर भी पाकिस्तान की भांति ब्रिटेन और अमरीका के समाजवाद विरोधी सामरिक गुट्ट का अंग बनने से इनकार कर दिया और सदा शांति की रक्षा की और युद्ध विरोधी अंतरराष्ट्रीय नीति अपनाई। विश्व शान्ति रक्षा के प्रयत्न में भारतीय सरकार ने अमरीका और ब्रिटेन को संतुष्ट कर के लाभ पाने की भी चिन्ता नहीं की। इस देश में ऐसा पूंजीपति वर्ग भी है जो अमरीका और ब्रिटेन से लाभ उठाने के लिये उन की किसी भी शर्त को स्वीकार कर लेने के लिए लालायित है परन्तु भारतीय सरकार अपना आत्मनिर्णय का अधिकार किसी भी मूल्य पर बेचने के लिये तैयार नहीं हुई।

इसी समय अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति का एक पहलू भी सामने आया। यह है समाजवादी आर्थिक प्रणाली की अनेक देशों में विस्मयजनक सफलता। सोवियत, चीन और पूर्वी योरुप के जनतंत्र ने केवल आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हो गए बल्कि अन्य अविकसित देशों को औद्योगीकरण के लिए माल अथवा जानकारी की सहायता देने के लिए भी तैयार हो गए। इन समाजवादी देशों में अविकसित देशों की सहायता के मूल्य में न तो उन देशों से मुनाफा कमाने का अधिकार मांगा और न अपने गुट्ट में सम्मिलित होने की

राजनैतिक परवशता की शर्तें ही रखीं। निश्चय ही भारतीय सरकार को समाजवादी देशों का यह सौदा ही अन्य सम्मान राष्ट्रहित और अपनी शांति समर्थन की अन्तर्राष्ट्रीय नीति के अनुकूल जान पड़ा।

गांधीवादी रामराज्य के उद्देश्य मालिक श्रेणी के स्वत्व और स्वार्थ की रक्षा में विश्वास रखते हुए भी कांग्रेसी सरकार के कर्णधारों को यह मानना पड़ा कि अन्तर्राष्ट्रीय पूंजीवाद को उन की आत्मनिर्भरता और सबल तथा समर्थ होना मंजूर नहीं और न अन्तर्राष्ट्रीय पूंजीवाद भारत अथवा उस जैसे दूसरे देशों के राजनैतिक आत्मनिर्णय के अधिकार को आवाघ रूप में स्वीकार करना चाहता है। इस के अतिरिक्त उन्हें यह भी स्वीकार करना पड़ा कि इस देश की जनता की आर्थिक समस्या को अकेले पूंजीवादी विकास के मार्ग से नहीं सुलझाया जा सकता। इस देश के गिरे हुए जीवन स्तर और बेकारी को व्यक्तिगत मुनाफे की राह चलने वाले पूंजीवादी व्यवसाय जिन का स्वार्थ किसी हद तक बेकारी बनी रहने में ही है, दूर नहीं कर सकते। यहां तक कि इस देश के पूंजीवादियों के लिए अच्छा मुनाफा कमा सकने के लिए इस देश की जनता की क्रय शक्ति को बढ़ा सकने का काम भी अपने तत्काल स्वार्थ में फंसी पूंजीपति श्रेणी नहीं कर सकती।

इन परिस्थितियों में रामराजी सरकार के कर्णधारों को अपनी राष्ट्रीय नीति में परिवर्तन करना ही पड़ा। पहली पंच वर्षीय योजना में भी राष्ट्रीय उद्योग विकास की योजनायें थी परन्तु वे अधिकांश में केवल दिखावा मात्र थीं। राष्ट्रीय उद्योगों को चालू करने का ढंग ऐसा था कि उस से पूंजीपति श्रेणी के व्यवसायों और उद्योगों पर आंच आने की सम्भावना न रहे। परन्तु आठ वर्ष की विफलताओं ने उन्हें राष्ट्रीय क्षेत्र में गम्भीरता से कदम बढ़ाने के लिये विवश कर दिया है। वे इस तथ्य को आंखों से ओझल नहीं कर सकते कि इस देश की पूंजीपति श्रेणी की स्थिति भी इस राष्ट्र की स्थिति और सामर्थ्य पर ही निर्भर करती है और इस राष्ट्र के विकास और सफलता का मार्ग समाजवादी प्रणाली द्वारा उत्पादन के राष्ट्रीयकरण का ही मार्ग है। गांधीवादी कांग्रेस ने भी समाजवादी मार्ग को अपना लक्ष्य घोषित करना आवश्यक समझा परन्तु कांग्रेस के नायकों के लिये अपनी श्रेणी के स्वार्थों का पूर्णतः बलिदान कर देना भी कठिन है। वे ऐसा समन्वय ढूंढने की चिंता में है पूंजीपति श्रेणी के रामराजी सत्वों की रक्षा करता हुआ राष्ट्र की आर्थिक

स्थिति को सुधार सके। समाजवादी प्रणाली से होने वाले लाभ भी उठाये जा सकें और मालिक श्रेणी के शोषण के अधिकारों की 'हिंसा' भी न हो।

कांग्रेस अहिंसात्मक क्रान्ति का व्यर्थ ढिंडोरा पीटती आई है ब्रिटिश द्वारा कायम की हुई व्यवस्था को ज्यों-त्यों निबाहते रहना कोई क्रान्ति नहीं थी। इस व्यवस्था में मालिक श्रेणी के अधिकारों पर आंच नहीं आई परन्तु श्रमिकवर्ग की और नागरिक स्वतंत्रता की हिंसा होती ही रही। कांग्रेस की नीति में क्रान्ति का आभास यदि कहीं दिखाई दे सकता है तो वह परिस्थितियों को पहचान कर अथवा परिस्थितियों से विवश होकर समाजवादी आर्थिक प्रणाली के लक्ष्य को स्वीकार करने में ही है जो जनसाधारण श्रमिक उत्पादकों के लिये अहिंसा के अधिकार को स्वीकार करता है। कांग्रेस इस लक्ष को स्वीकार करने भी इस की प्राप्ति का भार उन लोगों के कंधों पर रख रही है जो न तो समाजवादी आर्थिक प्राणाली के विज्ञान से परिचित हैं न इस में विश्वास रखते हैं उन के विचार में रामराज और सामन्तवाद का यही समन्वय सम्भव है। देश के उन दलों और लोगों को जो कि कांग्रेस द्वारा समाजवादी प्रणाली का लक्ष स्वीकार करनें से पहले ही समाजवादी प्रणाली में विश्वास प्रकट करते आये है, राष्ट्रीय उद्योगों की सफलता में सहयोग देने से सावधानी पूर्वक दूर रखा जाता है।

पं० नेहरू अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में समाजवादी देशों की शांति प्रिय नीति का समर्थन करने के लिये विवश होकर, अन्तर्राष्ट्रीय पूंजीवाद की सामरिक गुट्ट की नीति का विरोध करने के लिये विवश होकर और देश में पूंजीवादी प्रणाली द्वारा राष्ट्र के साधनों के विकास की असफलता देखकर समाजवादी प्रणाली के लक्ष की घोषणा तो करते हैं परन्तु अपनी सम्पूर्ण शक्ति से इस देश में समाजवादी प्रणाली की स्थापना के लिये प्रयत्न करने वालों का विरोध भी करने से नहीं चूकते। सम्भवत: वे समाजवादी प्रणाली को स्वीकार करना तो चाहते हैं परन्तु उस प्रणाली का नेतृत्व भी अपनी पूंजीपति श्रेणी के हाथों में ही सुरक्षित रखने का भी स्वप्न देखते हैं। इसलिये वे अपने समाजवाद को मार्क्सवाद के विना ही चलाना चाहते हैं। ऐसा न करने से शायद रामराज्य रामराज्य न रह कर दलित शम्बूक प्रजा का ही राज्य बन जावेगा।

सिंहावलोकन

पाठक जनता भारतीय सशस्त्र क्रान्ति के रहस्यों के तथ्य जानने के लिये चिरकाल से उत्सुक प्रतीक्षा में थी। सिंहावलोकन से उन का समाधान हो सकेगा।

भारतीय सशस्त्र क्रान्ति की चेष्टा के आन्दोलन के विषय में अनेक भ्रान्तियां और दन्तकथायें हुई हैं। साथी यशपाल इस आन्दोलन के सक्रिय नेताओं में से थे। शहीद चन्द्रशेखर आजाद के बाद वे ही 'हिन्दुस्तानी समाजवादी प्रजातन्त्र सेना' के कमांडर इनचीफ निर्वाचित हुए थे। इस आन्दोलन के विषय में यशपाल से अधिक प्रामाणिक बात दूसरा कौन कह सकेगा ?

पुस्तक में यशपाल की अपनी बात से अधिक चर्चा है उन के साथियों की। यह पुस्तक केवल रोमांचक घटनाओं का वही-खाता ही नहीं बल्कि क्रान्तिकारियों के जीवन के अन्तरतम रहस्यों से सम्बन्ध रखने वाले सैद्धान्तिक और मनोवैज्ञानिक सूत्रों की विवेचना भी इस में है। आप को क्रान्तिकारी आन्दोलन के नैतिक आधार और विचारधारा का भी प्रमाणिक विश्लेषण इस पुस्तक में मिलेगा।

'सिंहावलोकन' क्रान्तिकारियों के त्याग आवेश-उन्मेशमय और आपदपूर्ण सामूहिक जीवन का वास्तविक उपन्यास है।

इस पुस्तक के तीनों भाग प्रकाशित हो चुके हैं।

प्रकाशक